ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष - 11 ◆ अंक - 1 ◆ जनवरी- फरवरी 2026 ◆ मूल्य ₹40.00

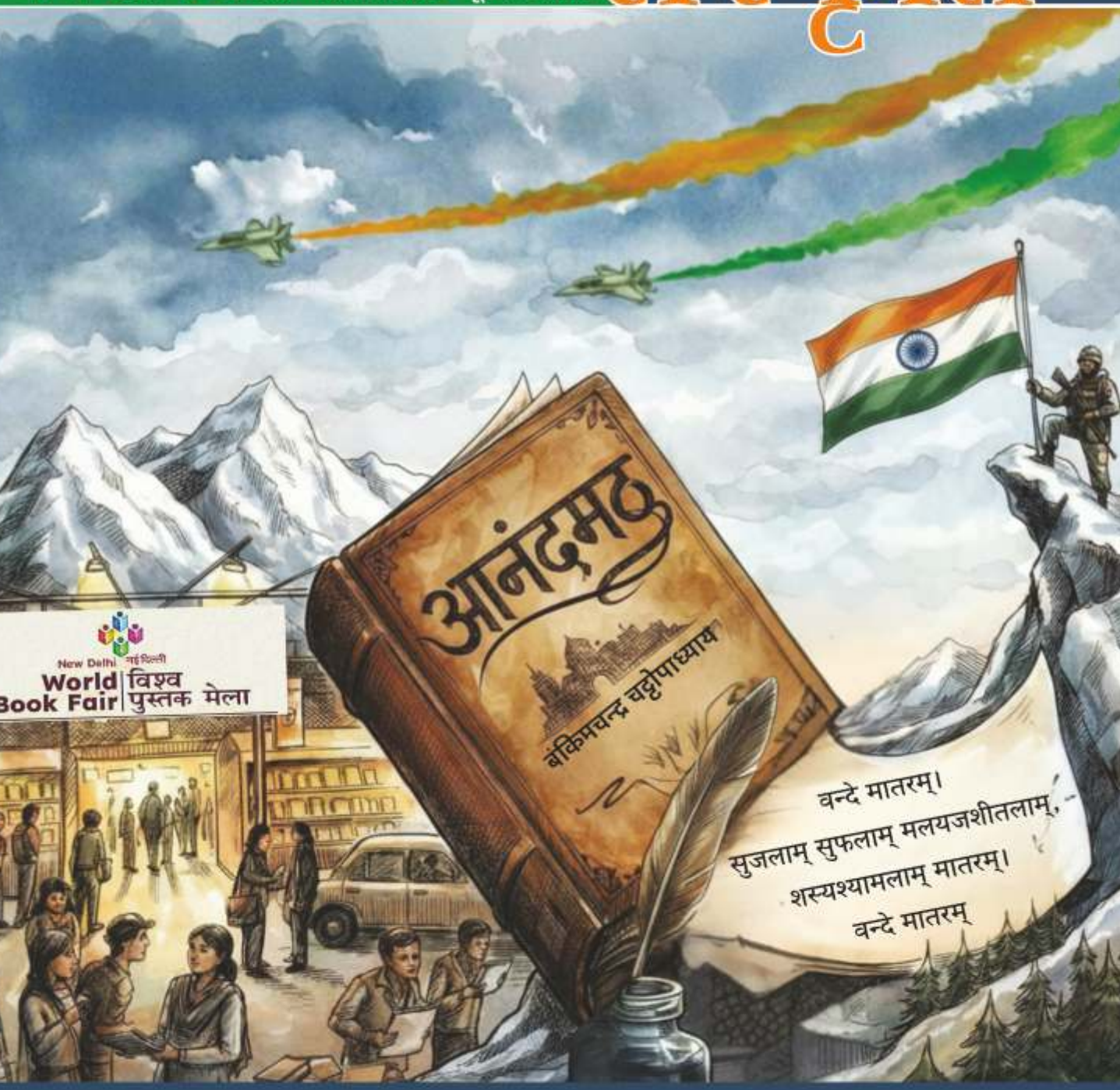

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सैन्य शौर्य और पराक्रम • पुस्तक मेले की उपयोगिता और महत्व

राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ति पर स्मरणोत्सव • राष्ट्र की प्रगति में हिंदी भाषा की भूमिका

शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
MINISTRY OF EDUCATION
Government of India

nbt.india

विश्व के सबसे बड़े B2C पुस्तक मेले में आपका स्वागत है!

भारतीय सैन्य इतिहास
थीम
शौर्य एवं प्रज्ञा@75

नई दिल्ली
विश्व पुस्तक मेला

10-18 जनवरी 2026

प्रातः 11:00 बजे से रात्रि 8:00 बजे

भारत मंडपम

प्रवेश निःशुल्क

आकर्षण

इंटरनेशनल इवेंट्स कॉर्नर
थीम मंडप | बाल मंडप
नई दिल्ली राइट्स टेबल | लेखक मंच
सांस्कृतिक कार्यक्रम | CEOSpeak

150 वर्षों का स्मरणोत्सव
वन्दे मातरम्

1000+ प्रकाशक

600+ गतिविधियाँ

3000+ स्टॉल

#NDWBF26

प्रधान संपादक

प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे

संपादक

दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग

अल्पना भसीन, विजयलक्ष्मी पाण्डेय

विज्ञापन एवं प्रसार

जनसंपर्क अनुभाग

उत्पादन

अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

चित्रांकन

अंजन बोस

सज्जा/डिजाइन

ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

सदस्यता शुल्क

व्यक्तियों के लिए

एक प्रति : ₹ 40.00

वार्षिक : ₹ 225.00

(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

पता : 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,

वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

फोन : 011-26707876

ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक

दीपक कुमार गुप्ता

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष-11; अंक-1; जनवरी-फरवरी, 2026

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* — 2

शौर्य — **स्वातंत्र्योत्तर भारत में सैन्य शौर्य और पराक्रम** —*अरुणेंद्र नाथ वर्मा* — 3

स्मरण — **गांधी ने सोचा, कहा और किया**—*डॉ. श्रीराम परिहार* — 6

पुस्तक मेला — **पुस्तक मेले की उपयोगिता और महत्व**—*राजेंद्र उपाध्याय* — 9

राष्ट्रगीत — **राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ति पर स्मरणोत्सव** —*गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'* — 11

मतदान पर्व — **जागृत मतदाताओं की नींव पर टिकी लोकतंत्र की गरिमा** —*अरविंद कुमार सिंह* — 14

महाकाव्य — **महाकाव्य रामायण की वैश्विक स्वीकार्यता**—*महेश शर्मा* — 17

भाषा — **राष्ट्र की प्रगति में हिंदी भाषा की भूमिका**—*डॉ. अमरनाथ* — 20

विमर्श — **बेटियों को मिले उचित शिक्षा और सम्मान**—*सुमन बाजपेयी* — 23

विज्ञान — **राष्ट्रीय विज्ञान दिवस : सतत भविष्य के लिए विज्ञान** —*डॉ. शुभ्रता मिश्रा* — 26

पत्रकारिता — **'उदन्तमार्त्तंड' से शुरू हुआ भारतीय पत्रकारिता का पहला कदम**—*डॉ. अनुपम कुमार* — 29

शब्द-ज्ञान — **आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32

विमर्श — **प्रवासी भारतीय दिवस : भारत की सांस्कृतिक-भाषिक विरासत का महाकुंभ**—*प्रो. हेमांशु सेन* — 34

स्मरण — **युवाओं के प्रेरणापुंज स्वामी विवेकानंद**—*प्रदीप सरदाना* — 38

पुस्तक मेला — **डिजिटल युग में पुस्तक मेलों की प्रासंगिकता**—*स्वतंत्र शुक्ल* — 41

श्रद्धांजलि — **साहित्य के महायात्री : रामदरश मिश्र**—*हरिशंकर राढ़ी* — 44

पुस्तक समीक्षा — 47

साहित्यिक उत्सव — **नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला-2026**—*पुस्तक संस्कृति डेस्क* — 58

साहित्यिक गतिविधियाँ — 60

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2026

पुस्तक मेले में आकर, पुस्तक संस्कृति के प्रचार-प्रसार में एनबीटी के भागीदार बनें

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2026 दस्तक दे चुका है। पत्रिका का यह अंक आपके हाथों में आने तक विश्व पुस्तक मेले की शुरुआत हो चुकी होगी। 'पुस्तकों का महाकुंभ' कहा जाने वाला यह पुस्तक मेला लगभग चार दशकों के बाद, वर्ष 2013 से, एक वार्षिक परिघटना बन गया है, और तबसे यह नई दिल्ली के भारत मंडपम् परिसर में प्रति वर्ष आयोजित होने लगा है। इस वर्ष आयोजित होने वाला विश्व पुस्तक मेला 54वें वर्ष में प्रवेश कर गया है तथा क्रम के लिहाज से 33वाँ है।

इस वर्ष, नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले की थीम है—'भारतीय सैन्य इतिहास : शौर्य एवं प्रज्ञा @75'। स्वाधीनता के बाद से, भारतीय सेना के संगठन एवं शक्ति में एक आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। आज भारत को विश्व की चौथी सबसे बड़ी सैन्य शक्ति माना जाता है। भारतीय सेना के शौर्य एवं पराक्रम तथा प्रज्ञा एवं शक्ति को अब पूरा विश्व मान और स्वीकार कर चुका है। ऐसे में, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा पुस्तकों के माध्यम से, भारतीय सैन्य परंपरा एवं इतिहास का सिंहावलोकन करना सहज एवं स्वाभाविक है।

10 से 18 जनवरी, 2026 तक आयोजित होने वाला नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला ने, अपनी पाँच दशकों की लंबी यात्रा के पश्चात्, अब अपनी एक विशिष्ट पहचान बना ली है, साथ ही, वैश्विक मान्यता भी प्राप्त कर चुका है। यह पुस्तक मेला एशिया-अफ्रीका का प्रायः सबसे बड़ा पुस्तक मेला बन चुका है। इस वर्ष, 'कतर' को सम्मानित अतिथि देश के रूप में आमंत्रित किया गया है, जबकि 'स्पेन' फोकस देश के रूप में मेला में भाग ले रहा है। प्रसंगवश, यह बताता चलूँ कि गत वर्ष भारत ने मॉस्को अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला में सम्मानित अतिथि देश के रूप में भाग लिया था।

इस वर्ष के नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में आप सब सुधी पाठक, पुस्तकप्रेमी, लेखक, बुद्धिजीवी और प्रकाशक, विशेष रूप से बच्चे, स्कूल एवं कॉलेज के छात्र-छात्राएँ, बड़ी संख्या में आएँ और ज्ञान के इस महाकुंभ में आकर पुस्तक रूपी नदी में डुबकी लगाएँ, हम आपसे अनुरोध करते हैं।

वस्तुतः, पुस्तकें हमारे अंतस का परिष्कार करती हैं और हमारे भीतर ज्ञान का संस्कार भरती हैं। इसलिए, इस पुस्तक मेले में आकर, राष्ट्र में पुस्तक संस्कृति के प्रचार-प्रसार में आप भी एनबीटी के साथ साझा भागीदार बनें, यह आह्वान करते हैं। पुस्तक मेले से कम-से-कम दो पुस्तकें खरीदकर आप भी हमारे इस पुस्तक यज्ञ में सहज ही भागीदार बन जाएँगे।

सद्यः समाप्त वर्ष 2025 को हमने राष्ट्रगीत, 'वंदे मातरम्' की रचना के 150 वर्ष पूर्ण होने के स्मरण के रूप में मनाया है। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय रचित इस गीत ने किस तरह राष्ट्र में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का बीजारोपण किया, इसे स्मरण करना न केवल इस ऐतिहासिक गीत के रचनाकार को कृतज्ञ राष्ट्र की सच्ची श्रद्धांजलि है, वरन् इस गीत का भी राष्ट्र द्वारा किया गया सम्मान है।

गत वर्ष, गीत के रचना-दिवस, 7 नवंबर से वर्षभर का स्मरणोत्सव प्रारंभ हो गया है। यहाँ यदि हम 'वंदे मातरम्' के, देश के स्वाधीनता आंदोलन में और भारतीय जनमानस पर पड़ने वाले महत प्रभाव को याद न करें, यह तो असंभव ही है। वस्तुतः, अपने रचना-समय के मात्र ग्यारहवें वर्ष, यानी 1886 के कांग्रेस अधिवेशन, में ही यह गीत सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत किया जाकर स्वाधीनता आंदोलन का प्रायः मंत्र गीत बन गया था, जो कालक्रम में, देश के हर स्वाधीनता सेनानी और क्रांतिकारी द्वारा गाया जाने वाला एक अपरिहार्य गीत बन गया। कालांतर में, यह गीत देश के स्वाधीनता आंदोलन एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण में किस हद तक प्रेरणापुंज साबित हुआ, इस पर कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह गीत एक ऐसा राष्ट्रीय उद्घोष बन गया, जिसने ब्रिटिश सत्ता की चूलें हिला दीं।

'वंदे मातरम्', वस्तुतः, भारतवर्ष की समृद्धि, सौंदर्य, ऐक्य और शक्ति का मंत्र गीत साबित हुआ, न केवल परतंत्र भारत के लिए, वरन् स्वतंत्र भारत के लिए भी। आज भी इस गीत को गाकर राष्ट्र की धमनियों में चेतना एवं शक्ति, साथ ही राष्ट्र-भक्ति का संचार हो जाता है। इस जीवंत गीत को लेकर न केवल रचनाकार को, वरन् अरविंद घोष समेत अनेक अन्य महत व्यक्तित्वों को भी इसके कालजयी होने का सहज ही अनुमान हो गया था, जो कालांतर में सच साबित भी हुआ।

बीते वर्ष को हमने लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की भी 150वीं जयंती के रूप में मनाकर उन्हें स्मरण किया और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। राष्ट्र की एकता, अखंडता और शक्ति के प्रतीक, प्रेरक पुरुष हैं सरदार पटेल। इस वर्ष, 12 जनवरी को भारत की संस्कृति के राष्ट्र-प्रतीक व्यक्तित्व, स्वामी विवेकानंद की 163वीं जयंती पर हम उन्हें भी नमन करते हैं। उनके जन्मदिन को हम राष्ट्रीय युवा दिवस मनाकर सच ही उन्हें सम्मान देते हैं। वे युवाओं के शाश्वत प्रेरणापुंज हैं।

प्रस्तुत अंक आपको कैसा लगा है, यदि अपने भाव एवं विचारों से हमें अवगत कराएँगे तो हमें अच्छा लगेगा।

(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सैन्य शौर्य और पराक्रम

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विचारधाराओं और संसाधनों के आधार पर बने दो वैश्विक गुटों के बीच दशकों तक चला शीतयुद्ध सोवियत रूस के विघटन के बाद ढीला पड़ गया था। लेकिन पिछले दो-तीन वर्षों से चलते आ रहे रूस-युक्रेन युद्ध और इजराइल-फिलिस्तीन के बीच अंतहीन विध्वंसक विवाद जैसे उदाहरण सिद्ध करते हैं कि कोई भी देश अपनी स्वतंत्रता और संप्रभुता की सुरक्षा दूसरे देशों की सहायता पर आश्रित होकर सुनिश्चित नहीं कर

अरुणेंद्र नाथ वर्मा

जन्म : 05 अप्रैल 1945, गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : एम.बी.ए., एल.एल.बी., डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कॉलेज से रक्षा अध्ययन में परास्नातक

प्रकाशन : कहानी, हास्य-व्यंग्य एवं यात्रावृत्तांत का प्रमुख समाचारपत्रों और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशन। अंग्रेजी में उपन्यास 'द लूपहोल' तथा कहानी-संग्रह 'इकोज फ्रॉम द स्काई', हिंदी में हास्य-व्यंग्य उपन्यास 'जो घर फूँके आपना', कहानी-संग्रह 'इंद्रधनुषी जाल में एक जलपरी', 'नहीं, मैं तुम्हारी बेटी नहीं हूँ', 'तृप्ति और अन्य कहानियाँ, यात्रा-वृत्तांत 'मुठ्ठी भर सैलानीपन' और हास्य-व्यंग्य कहानी-संग्रह 'सन्नाटे से खलबली तक' प्रकाशित। ललित निबंध-संग्रह 'मन कबूतर' प्रकाशनाधीन।

संप्रति : भारतीय वायु सेना की फ्लाइंग शाखा में विंग कमांडर पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन

संपर्क : मोबाइल– 9811631141

ईमेल– arungraphicsverma@gmail.com

सकता, विशेषकर आज के बहुध्रुवीय संसार में, जहाँ चीन और रूस बड़ी आर्थिक और सैन्य महाशक्तियों के रूप में उभर रहे हैं। आज से 63 वर्ष पहले पंचशील और गुट निरपेक्षता का संदेश देते भारत पर 1962 में चीन के अप्रत्याशित आक्रमण ने सिद्ध कर दिया था कि वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठापूर्ण स्थान केवल आर्थिक एवं सैन्य सामर्थ्य के बूते पर ही मिलता है। शांति की दुहाई देने भर से न तो किसी देश की संप्रभुता की रक्षा हो सकती है, न ही उसे कोई सम्मान मिलता है। अतः यह प्रश्न गहरी विवेचना की माँग करता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हर क्षेत्र में प्रगति करते भारत की सैन्य शक्ति उसकी बहुमुखी प्रगति के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल पा रही है या नहीं।

इस संदर्भ में पिछले दिनों विश्व की सैन्य शक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित दो प्रामाणिक संस्थाओं की घोषणाओं ने भारत को गौरवान्वित किया। ग्लोबल फायर पॉवर डॉट कॉम सन् 2006 में स्थापित एक प्रामाणिक पटल है, जो ग्लोबल फायर पॉवर इंडेक्स, अर्थात् वैश्विक प्रहारक क्षमता सूची के आकलन में 60 से अधिक कारकों पर 145 से अधिक देशों की सेनाओं का संज्ञान लेता है। सन् 2025 की नवीनतम सूची में भारतीय सैन्य शक्ति को अमेरिका, रूस और चीन के बाद विश्व में चौथी सैन्य शक्ति घोषित किया गया है। भारत की 14 लाख सैनिकों वाली सेनाओं की संख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है और भारत अपनी सकल राष्ट्रीय आय का बड़ा हिस्सा सैन्य संसाधनों पर खर्च कर रहा है। इसके बावजूद, तेजी से आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ते भारत का सकल प्रहारक क्षमता में चौथे स्थान पर, अर्थात् चीन से नीचे होना सिद्ध करता है कि सैन्य शक्ति का विकास आर्थिक विकास के साथ कदम मिलाकर चलता है। भारत की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में वृद्धि दर इस वर्ष 6.5 से 7 प्रतिशत होने की संभावना है, जबकि पूरे विश्व के लिए औसत वृद्धि की दर इसकी आधी होगी और चीन

की 4.8 प्रतिशत। लेकिन चीन की जीडीपी अभी भी भारत से बहुत आगे है। जनसंख्या में चीन को पीछे छोड़ रहे भारत की आर्थिक प्रगति दुनिया के सभी देशों से तेज बनी रही तो चीन से भी अधिक बलशाली सैन्य शक्ति बन जाने में उसे अधिक समय नहीं लगेगा।

उधर, वर्ल्ड डायरेक्टरी ऑफ मॉडर्न मिलिट्री एयरक्राफ्ट नामक सूची में भारत अभी ही तीसरे स्थान पर अर्थात् चीन से ऊपर आ चुका है, जबकि अमेरिकी और रूसी वायुसेनाएँ प्रथम और द्वितीय स्थान पर हैं। इन तालिकाओं के नामों से स्पष्ट है कि ग्लोबल फायर पॉवर इंडेक्स में सकल सामरिक प्रहारक क्षमता का आकलन होता है, जबकि वर्ल्ड डायरेक्टरी केवल वायुसेनाओं की तुलना करती है। भारतीय वायुसेना के सकल बेड़े में विमानों की संख्या चीन से एक-तिहाई भर है, लेकिन उसकी हवाई शक्ति के आधुनिकीकरण की स्थिति और विमानों को उड़ने में सहायक बंदोबस्त या लॉजिस्टिक्स सहारे की क्षमता और उसके मानव संसाधन का कौशल चीन से बेहतर आँका गया है। ग्लोबल फायर पॉवर इंडेक्स की कमी यह है कि पूरी प्रहारक क्षमता का आकलन करने में वह केवल आँकड़ों और संख्याओं को संज्ञान में लेता है, भले ही उनमें पुराने पड़ चुके संसाधन शामिल हों। जाहिर है कि वर्ल्ड डायरेक्टरी में भारत को विश्व की तीसरी सबसे शक्तिशाली आकाशीय शक्ति के रूप में आँकने के पीछे 'ऑपरेशन सिंदूर' में हासिल सफलता है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद से लेकर आज तक भारतीय सेना पाकिस्तान को कई बार घोषित और अघोषित युद्धों में धूल चटा चुकी है। इन्हीं अनुभवों के कारण चीन के साथ तुलनात्मक स्थिति भी अब बदल रही है। चीन की सेनाओं का युद्ध का अनुभव केवल युद्धाभ्यासों तक सीमित रहा है। नतीजा यह है कि सन्'62 में हारी हुई भारतीय सेना पिछले कुछ वर्षों में चीन की घुसपैठ को दृढ़ता के साथ रोक पाई है। डोकलाम में जहाँ वह चीन के सामने अंगद के पाँव की तरह जमी रही, वहीं लद्दाख की गलवान घाटी में बीस भारतीय सैनिकों की तुलना में चीन के 60 सैनिकों को जान से हाथ धोना पड़ा। स्वतंत्र भारत में सेना लगातार जिस लगन से शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करती आई है, उसका विहंगावलोकन समीचीन होगा।

15 अगस्त, 1947 को मिली स्वतंत्रता का रक्ताभिषेक भारतीय सेना को दो ही महीने बाद अक्तूबर 1947 में करना पड़ा था। यह अप्रत्याशित चुनौती पश्तून कबायली हमलावरों के छद्म रूप में पाकिस्तान की थलसेना ने दी थी। कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने इस आक्रमण के बाद कश्मीर के भारत में विलय की घोषणा कर दी, तो तिलमिलाये पाकिस्तान ने कश्मीर की सरजमीन को हथियाने के लिए कुछ उठा नहीं रखा। भारत के लिए कश्मीर घाटी में भारतीय सेना को तुरंत पहुँचाना आसान नहीं था। भारतीय थलसेना के रणबाँकुरों को भारतीय वायुसेना ने डकोटा विमानों द्वारा 27 अक्तूबर, 1947 को श्रीनगर में पहुँचाया तो उन्हें तुरंत बारामुला, उरी, नौशेरा और पुंछ में भयंकर हमलों का सामना करना पड़ा। पर उनके पराक्रम के आगे कबायली हमलावरों को पिटते देखकर पाकिस्तान की सेना मई 1948 में खुलकर सामने आ गई। अंततः, कश्मीर घाटी और अधिकांश जम्मू क्षेत्र को पूरी तरह बचा लिया गया, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ को हस्तक्षेप करने का निमंत्रण तत्कालीन भारत सरकार ने इतनी जल्दबाजी में ले लिया कि पश्चिमी कश्मीर और गिलगित बालतिस्तान के उत्तरी क्षेत्र को तथाकथित 'आजाद' फौज के हाथों से छुड़ाने का अवसर हमारी सेना को नहीं मिल सका। यह तथाकथित आजाद कश्मीर एक बेइलाज नासूर की तरह पकिस्तान और भारत के बीच रह-रहकर युद्ध की स्थिति पैदा करने के लिए बचा रह गया।

सन् 47-48 के कश्मीर ऑपरेशंस या प्रथम कश्मीर युद्ध में अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन करने वाले सेनानियों में मेजर सोमनाथ शर्मा का नाम अमर रहेगा। पहले परमवीर चक्र से सम्मानित कुमाऊँ रेजिमेंट के इस अफसर ने अपने रक्त की आखिरी बूँद तक का बलिदान देकर श्रीनगर हवाई अड्डे को शत्रु के हाथों में जाने से बचाया था। उनके अतिरिक्त, नायक जदुनाथ सिंह, सेकेंड लेफ्टिनेंट राम राघोबा राने, कंपनी हवलदार मेजर पीरु सिंह और लैंस नायक करम सिंह भी इस उच्चतम सम्मान के अधिकारी रहे। ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह, जमादार नंद सिंह, ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान भी इस युद्ध में महावीर चक्र से सम्मानित किये गए थे।

सन् 1948 के बाद के वर्षों में पाकिस्तान से गणतंत्र का जनाजा उठ गया। सत्ता हथियाने के बाद से ही उसके फौजी आकाओं की गलतफहमी लगातार बनी हुई थी कि गजवाये हिंद की तमन्ना पूरी हो न हो, पर एक दिन कश्मीर को भारत से छीन लेने में वे जरूर सफल हो जाएँगे। लेकिन जागी आँखों से देखे जाने वाला पाकिस्तान का यह ख्वाब 1965 और 1971 के भारत-पाक युद्धों में बेहद डरावने दुःस्वप्न में बदल गया।

कश्मीर को हथियाने के लिए पाकिस्तान ने 1965 में एक बार फिर कश्मीर में स्थानीय और छद्म हमलावरों के प्रहार के रूप में 'ऑपरेशन जिब्राल्टर' नामक अघोषित युद्ध छेड़ा। कश्मीर से लेकर कच्छ के रण तक भारत-पाक सीमा पर पाकिस्तान की सशस्त्र घुसपैठियों को भेजने की पुरानी तकनीक महीनों तक नाकाम रहने के बाद सितंबर 1965 में अंततः पूर्ण युद्ध में बदल दी गई। इस युद्ध में भारत और पाकिस्तान के टैंकों की भयंकर टक्कर अखनूर, छाम्ब और खेमकरण क्षेत्रों में हुई। फलस्वरूप, खेमकरण के उपजाऊ खेत पाकिस्तानी टैंकों के विशाल कब्रिस्तान में बदल गए। पाकिस्तानी टैंक का अकेले सामना करते क्वार्टर मास्टर अब्दुल हमीद के अद्भुत शौर्य के सम्मान में उन्हें मरणोपरांत परमवीर चक्र दिया गया। ले. कर्नल तारापोर को भी इसी सर्वोच्च सम्मान से नवाजा गया। 1965 के युद्ध में भारतीय वायुसेना ने खुलकर भाग लिया। भारत के छोटे-से नैट लड़ाकू विमान द्वारा पाकिस्तान के कहीं अधिक तेज और आधुनिक

एफ 86 सैबर लड़ाकू विमान को मार गिराने वाले पहले दो भारतीय वैमानिक थे—ट्रेवर और डेंजिल कीलर बंधु, जिन्हें इस पराक्रम के लिए वीर चक्र से सम्मानित किया गया। भारतीय नौसेना ने इस युद्ध में मुख्यतः तटीय क्षेत्रों की निगरानी का रक्षात्मक किरदार अदा किया। कराची बंदरगाह को क्षति पहुँचाने के लिए जो सीमित कार्यवाही इस युद्ध में की गई उसका खुलकर प्रदर्शन छह साल बाद 1971 के युद्ध में देखने को मिला। दुर्भाग्य से, कठिन समय के साथी रूस ने भारत को उस समय ताशकंद संधि के लिए प्रेरित किया, जब भारतीय सेनाएँ पाकिस्तान को निर्णायक उत्तर देने के निकट थीं। 1965 के भारत-पाक युद्ध में दोनों देशों की सेनाओं को काफी क्षति उठानी पड़ी। इस अनावश्यक रक्तपात से पाकिस्तान को कुछ भी हासिल नहीं हुआ, लेकिन उसके फौजी हुक्मरानों की आँखें पूरी तरह से खुल नहीं सकीं। उधर, इस बार जो कुछ कमी रह गई थी, उसे भारतीय सेनाओं ने सुधारने के लिए कई कदम उठाए। मसलन, द्वारका (गुजरात) के निकट पाकिस्तानी नौसेना की कार्रवाई के कारण भारतीय नौसेना को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। इसी का नतीजा था कि छह साल बाद 1971 में भारतीय नौसेना ने कराची बंदरगाह के अंदर पाकिस्तानी नौसेना के ठिकानों को नेस्तनाबूद कर दिया और पूर्वी पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए भेजी गई पाकिस्तानी पनडुब्बी गाजी को बंगाल की खाड़ी में जलसमाधि दे दी।

सन् 1971 के युद्ध की उत्पत्ति पाकिस्तान की कश्मीर हथियाने की लालसा न होकर उसके अंदरूनी और आत्मघाती कार्रवाइयों का नतीजा थी। इसी आत्मघाती मनोवृत्ति के चलते उसने अपने ही देश के एक बड़े भूभाग को पंजाबी पाकिस्तान की एक कालोनी की तरह बूटों तले रौंदा। लाखों शरणार्थियों के बोझ से कराहते भारत ने विश्व का ध्यान पाकिस्तान के इस दुस्साहस की तरफ दिलाने की कोशिश में असफल होकर जिस युद्ध का सहारा लिया उसने एशिया के एक बड़े भूभाग का नक्शा ही बदल दिया। 93 हजार पाकिस्तानी सैनिकों का भारतीय सेना के सामने आत्मसमर्पण विश्व के सैन्य इतिहास में सदा के लिए दर्ज हो गया है। इस युद्ध में सेना के तीनों अंगों ने बेहतरीन प्रदर्शन किया। तत्कालीन पूर्व पाकिस्तान के आकाश को जिस तरह भारतीय वायुसेना ने आच्छादित कर लिया, उसकी कल्पना आज के विश्व में कहीं और नहीं की जा सकती है। थलसेनाध्यक्ष सैम मानेकशा का नेतृत्व और भारतीय सेना के तीनों अंगों के तालमेल की अमर कथा है यह युद्ध। 1971 के युद्ध में शौर्य प्रदर्शन करने वाले सैनिकों की सूची लंबी है, लेकिन इसका उल्लेख जरूरी है कि श्रीनगर हवाई क्षेत्र की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति देने वाले फ्लाइंग ऑफिसर निर्मल जीत सिंह सेखों को मिलने वाला पदक भारतीय वायुसेना के इतिहास में प्रथम परमवीर चक्र था।

“शांतिकाल में भारतीय सेनाओं द्वारा बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिक आपदाओं से राहत दिलाने और विदेशों में युद्ध की स्थिति में फँस गए भारतीय नागरिकों को सुरक्षापूर्वक स्वदेश वापस लाने के महत्वपूर्ण कार्यों की विवेचना करने के लिए तो एक स्वतंत्र लेख की जरूरत पड़ेगी। मानव की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति और तद्जन्य वैश्विक प्रतिद्वंद्विता के बरक्स भारत की तीव्र आर्थिक और सैन्य प्रगति हमारे पड़ोसी चीन और पाकिस्तान को कतई नहीं सुहाएगी।”

सन् 1971 के युद्ध में शर्मनाक हार को नित्य नए कुकृत्यों से छिपाने की कोशिश जनतंत्र को फौजी बूटों के तले रौंदने वाले पाकिस्तानी हुक्मरानों की मजबूरी बन गई है। इसी मजबूरी में 1999 में कारगिल की चोटियों पर मई से जुलाई के महीने में घात लगाकर हमला करने वाली पाकिस्तानी सेना को सदा की तरह मुँह की खानी पड़ी। 26 जुलाई तक भारत के वीर सैनिकों ने टाइगर हिल जैसी महत्वपूर्ण चोटियों पर दुबारा कब्जा कर लिया और करारी हार देकर पाकिस्तान को फिर से वही कड़वा घूँट पिलाया, जिसे हर कुछ वर्षों पर पीने का वह अभ्यस्त हो गया है।

वर्ष 2025 में ‘ऑपरेशन सिंदूर’ में पाकिस्तान के अंदर छिपे आतंकवादियों के नौ ठिकानों को केवल छब्बीस मिनट में नेस्तनाबूद करके हमारी सेना ने एक नया इतिहास रच दिया। इसके बाद जब पाकिस्तान के सैन्य हवाई अड्डे, राडार केंद्र, हेंगर और टोह लेने वाले AWACS विमान आदि भारतीय प्रक्षेपास्त्रों के शिकार बनाये गए तो पाकिस्तान के डायरेक्टर जेनरल ऑफ मिलिट्री ऑपरेशंस को सीधी फोन लाइन पर अपने भारतीय समकक्ष से युद्धबंदी की गुहार लगानी पड़ी। ऑपरेशन सिंदूर की उपलब्धियाँ अभी इतनी ताजी हैं कि उनका विस्तृत विवरण देना अनावश्यक होगा।

शांतिकाल में भारतीय सेनाओं द्वारा बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिक आपदाओं से राहत दिलाने और विदेशों में युद्ध की स्थिति में फँस गए भारतीय नागरिकों को सुरक्षापूर्वक स्वदेश वापस लाने के महत्वपूर्ण कार्यों की विवेचना करने के लिए तो एक स्वतंत्र लेख की जरूरत पड़ेगी। मानव की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति और तद्जन्य वैश्विक प्रतिद्वंद्विता के बरक्स भारत की तीव्र आर्थिक और सैन्य प्रगति हमारे पड़ोसी चीन और पाकिस्तान को कतई नहीं सुहाएगी। दुर्भाग्य से, बाँग्लादेश भी एहसानफरामोशी का नया कीर्तिमान स्थापित करके इन दोनों देशों की राह पर अग्रसर है। उधर, अमेरिका जैसे समृद्ध और शक्तिशाली देश को भी भारत की विश्व की महानतम शक्तियों के बीच स्थान बनाने की कोशिश हजम नहीं हो रही है। हमारी सेनाएँ इस जमीनी हकीकत से परिचित हैं और लगातार थियेटर कमांड, संयुक्त अभियान जैसे नीतिगत सुधार अपनी कार्यशैली में शामिल कर रही हैं। शस्त्रास्त्र में आत्मनिर्भरता इन्हीं परिवर्तनों का अंग है। लेकिन वर्तमान अप्रिय वैश्विक परिवेश का तकाजा है कि प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सेनाओं को सामर्थ्य देने के लिए देश का हर सामान्य नागरिक भी प्रतिबद्ध रहे।

गांधी ने सोचा, कहा और किया

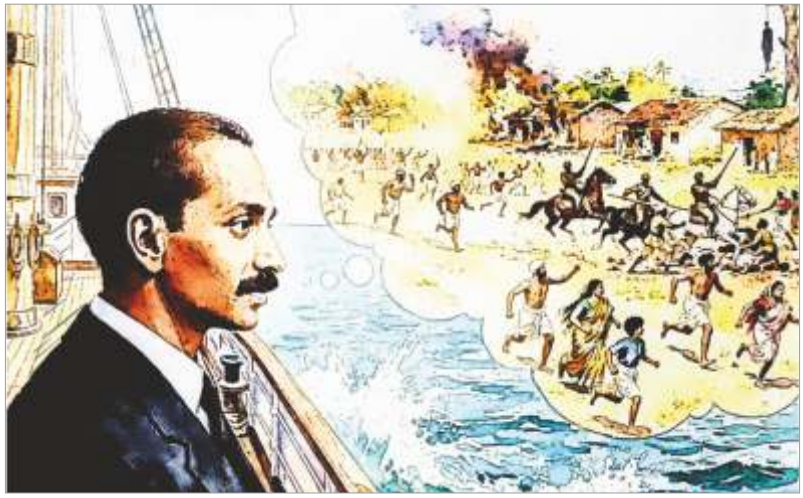

13 नवंबर, 1909 को गांधी इंग्लैंड का अपना मिशन पूरा कर पानी के जहाज से इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका लौटते हैं। अपने मिशन का कार्य पूरा करते समय भी उनके मन में भारत की स्वतंत्रता की भावनाएँ उठती रहती हैं। मस्तिष्क भारत की वास्तविक स्वतंत्रता की चिंता में डूबा रहता है। एक गहरा बोध और भारी बोझ उनके चैतन्य पर बना रहता है। चिंतन की दिशा में दौड़ते और भारतवर्ष की पराधीनता से मुक्ति के बाद 'स्वराज्य' को पाने की मद्धम आँच में तपता चित्त उन्हें थोड़ा अशांत और थोड़ा स्थिर किए रहता है। भारत और उसकी स्वाधीनता के अनेक प्रश्न, अनेक संदर्भ उन्हें मथते रहते हैं। ऐसी अवस्था में एस.एस. निल्दोनन कासल जहाज पर दस दिन और दस रात वे यात्रा करते हैं। जहाज के रद्दी कागजों, पर्चियों के कोरे भाग पर उन्होंने अपने चिंतन को शब्द-दर-शब्द आकार दिया; वह ही स्वराज्य की गीता बन गई है। उसी पुस्तक का नाम है—'हिन्द स्वराज्य' ।

'हिन्द स्वराज्य' अहिंसा के द्वारा स्वराज्य पाने का पथ-निर्देश है। यह सत्याग्रह का उद्घोष है। यह भारतीय सभ्यता को मानवता की कसौटी पर परखती है, फिर उसका संकीर्तन करती है। यह पश्चिमी सभ्यता को 'शैतानी सभ्यता' कहकर पुकारती है। यह प्रेम की बात कहती भी है और करती भी है। यह हिंसा से आत्मबलि को पावन मानती है। यह आत्मबल को पुष्ट करती है। यह आधुनिक सभ्यता को सृष्टि-विरोधी मानती है। यह जीवन में सत्य की ढिठाई से स्थापना और परिणति करती है। यह अहिंसा को अच्छी और पावन सभ्यता का मूल मानती है। यह देशसेवा का सत्यार्थ प्रतिपादित करती है। यह सत्य की खोज का संबल जगाकर प्रबल करती है। यह भारत का भला करने वालों का वंदन करती है। यह पराधीन भारत में जाग और जोश पैदा करने वाले पूर्वजों का स्मरण करती है। यह भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करती है। यह मातृभाषा को मन-मंदिर में स्थापित करती है। यह हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य करने हेतु तगड़ा पक्ष रखती है। यह गांधी के सपनों के स्वराज्य को संवादों में साकार करती है। यह धर्म की भी सच्ची व्याख्या करती है। यह निरंतर कर्म करते रहने का मंत्र देती है। यह पुस्तक गांधी का जीवन-दर्शन है। गांधी भारतवासियों के पूज्य पुरखे हैं। गांधी सत्य का आग्रही है। सत्य का शोधक है। सत्यानुरागी है। सत्य का पथिक है। वह धर्मनिष्ठ है। वह सनातनी है। वह भारतीय सभ्यता का पुजारी है।

गांधी ने भारतीय सभ्यता को अनेक दृष्टियों से जाँचा-परखा है। इस सभ्यता की

डॉ. श्रीराम परिहार

जन्म : 16 जनवरी, 1952; खंडवा, मध्य प्रदेश

शिक्षा : एम.ए. हिंदी, पीएच-डी, डी. लिट.

प्रकाशन : 'अँधेरे में उम्मीद', 'धूप का आस्वाद' और 'शब्द-शब्द झरते अर्थ' (ललित निबंध), 'निमाड़ी साहित्य का इतिहास' (लोक साहित्य), 'संस्कृति सलिला नर्मदा' (यात्रा-वृत्तांत) इत्यादि कई विधाओं में अनेक पुस्तकें प्रकाशित। इसके साथ ही, अनेक शोध एवं समीक्षाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित।

संप्रति : प्राचार्य के पद से श्री नीलकंठेश्वर शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खंडवा, मध्य प्रदेश से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9425342748
ईमेल— shriramknw@gmail.com

रीति, नीति, धर्म, मान्यता, विश्वास, अभिप्राय, मत, पंथ, आचार, व्यवहार, निष्ठा, सहजता, सीधाई, भलाई, श्रद्धा, सबूरी की जड़ों में पैठकर इनके प्राण-रस का सविवेक दर्शन किया है। हमारे पुरखों द्वारा बोये गए बीजों से जो सभ्यता पूरी दुनिया के लिए एक आदर्श बनी

“गांधी जब कहते हैं, मनुष्य के पुरुषार्थ की हद ईश्वर ने उसके शरीर की बनावट में ही बाँध दी है, तब वे गीता के कर्म सिद्धांत का ही अनेक अर्थों में समर्थन और पुनर्प्रतिपादन करते हैं। कल (मशीन), वकील, डॉक्टर की आधुनिक कुप्रवृत्ति और लोभवृत्ति का विरोध वे अपनी स्वस्थ भारतीय सभ्यता की नर्मदा में डुबकी लगाकर ही अनुभव करते हैं। कल (मशीन) की अस्वीकृति के पीछे मनुष्य को निकम्मा बना देने, अतिरिक्त धनी बना देने की कुनीति आधार रही है। कल-कारखानों ने व्यक्ति को अपनी जमीन, अपने घर, गाँव से उजाड़ा है। उसके हाथ का काम छीना है। उसके कौशल की हत्या की है। उसे कर्म से असंलग्न और असंबद्ध किया है। उसे आत्मनिर्भर के आँगन से उठाकर परावलंबन की सड़क पर पटक दिया है।”

हुई है, उसका मूल कारण इसकी आंतरिक सज्जा है। इसकी मूल्य-धारिता शक्ति है। रोम, यूनान, मिस्र सब मिट गए, क्योंकि इन्होंने शरीर को सज्जित करने, भोग भोगने, मन की चंचल इच्छाओं को पूरा करने, नगर बसाने, शिक्षित चालाक पैदा करने, तलवारों के बल पर भरोसा करने, नीतिवान पुरुषों, ऋषियों, मुनियों, साधु, संतों का निरादर करने, राजा को सर्वोच्च शक्ति मानने, भोग की वासना को तृप्त करने, मनुष्य की अनीति और अनास्था के बल पर ईश्वर को न मानने, ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने में ही मनुष्य जीवन का परम और सभ्यता का चरम माना है। गांधी बहुत चिंतन और समझ से सभ्यता को मनुष्य की आंतरिक शक्ति, आत्मबल, आत्मबलि, कर्तव्यनिष्ठा और इंद्रिय निग्रह के प्रकाश के रूप में अनुभव करते हैं।

“सभ्यता तो आचार-व्यवहार की वह रीति है, जिससे मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करें। कर्तव्य-पालन और नीति-पालन एक ही चीज है। नीति-पालन का अर्थ है—अपने मन और इंद्रियों को वश में रखना। यह करते हुए हम अपने आप को पहचानते हैं। यही ‘सुधार’ यानी सभ्यता है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह ‘कुधार’ यानी असभ्यता है।”

गांधी का ‘स्वराज्य’ और ‘भारत की सभ्यता’ एक ही राष्ट्रपुरुष की दो भुजाएँ हैं। गांधी जब कहते हैं, मनुष्य के पुरुषार्थ की हद ईश्वर ने उसके शरीर की बनावट में ही बाँध दी है, तब वे गीता के कर्म सिद्धांत का ही अनेक अर्थों में समर्थन और पुनर्प्रतिपादन करते हैं। कल (मशीन), वकील, डॉक्टर की आधुनिक कुप्रवृत्ति और लोभवृत्ति का विरोध वे अपनी स्वस्थ भारतीय सभ्यता की नर्मदा में डुबकी लगाकर ही अनुभव करते हैं। कल (मशीन) की अस्वीकृति के पीछे मनुष्य को निकम्मा बना देने, अतिरिक्त धनी बना देने की कुनीति आधार रही है। कल-कारखानों ने व्यक्ति को अपनी जमीन, अपने घर, गाँव से उजाड़ा है। उसके हाथ का काम छीना है। उसके कौशल की हत्या की है। उसे कर्म से असंलग्न और असंबद्ध किया है। उसे आत्मनिर्भर के आँगन से उठाकर परावलंबन की सड़क पर पटक दिया है।

गांधी ने अपने समय में यह सब देखा, अनुभव किया है। उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों-स्त्रियों की दुर्दशा को देखा है। आदमी इतना पोस्ती (आलसी) हुआ, दरिद्र हुआ कि उसकी स्थिति ‘जल बिच मीन पियासी’ की-सी हो गई है। वह शारीरिक श्रम से कट गया है। श्रम न करने के कारण नाना बीमारियों ने उसके शरीर में रोगों की डोंडी पिटवाना शुरू कर दी है। रोगी होने की स्थिति में आधुनिक शिक्षा प्राप्त चिकित्सकों की चाँदी हो गई है। भारतीय वैद्यिकी और आयुर्वेद से यह डॉक्टरी अनेक अर्थों में अलग-थलग है। इसमें सेवा का भाव गधे के सिर से सींगों की तरह गायब है। गांधी कहते हैं—‘वकीलों का धंधा ऐसा है, जो उन्हें अनीति सिखाता है।’ वह उन्हें लोभ के गड्ढे में गिराता है, जिससे थोड़े ही निकल पाते हैं। गांधी का सच्चा ‘स्वराज्य’ है— नीति आधारित ‘स्वराज्य’। भारत में पंच परमेश्वर हुआ करता है। न्याय को सत्य, नीति, धर्म, मर्यादा की खाट पर बैठा हुआ हमने भारत में पाया है। वकील, वैद्य सब नीति-नियमों के घेरे में खड़े हुए पाए जाते रहे हैं। लड़ाई-झगड़ा, टंटा-फसाद न करना ही साधारण नियम रहा है। साधारण जन सहज-सरल ढंग से अपना जीवन जीते रहे हैं। खेती-बाड़ी करते रहे हैं। अपने कौशल से प्रकृति से प्राप्य वस्तुओं से जीवनोपयोगी सामग्री बनाते रहते हैं। बारहों महीने काम करते रहने वाली दिनचर्या वाले वे लोग रहे हैं। वे अपने नियमों, नीतियों, आस्थाओं, मान्यताओं, भोलेपन, सरलताओं, सत्याग्रहों, पारस्परिक संबंधों की मिठास और स्वदेशी वस्तुओं में फेरफार नहीं करते रहे हैं। उनके लिए तो सच्चा स्वराज्य वही है। गांधी कहते हैं, “सच्चा स्वराज्य अपने मन पर राज्य करना है। उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल अथवा प्रेमबल है। इस बल से काम लेने के लिए बनना जरूरी है। मैंने उसे जैसा समझा है वैसा ही समझाने का यत्न किया है। और मेरा मन गवाही देता है कि ऐसा स्वराज्य प्राप्त करने के लिए मेरी यह देह समर्पित है।”

हमारी सभ्यता ने हमारे घर-गाँव, खेती-बाड़ी, वन-उपवन, घाटी-मैदान, नदी-नद-सर, में ही इतने काम खोल रखे हैं कि रात-दिन के उदय-अस्त पर भी खत्म न हों। पर हम तो अपने मूल को छोड़कर निर्मूल को पकड़ने के लिए बेतहाशा-बेखबर दौड़ रहे हैं। काटन,

बाँधन, गाहना, उगाहना, पछोरन, छिपकन, तोड़न, बीनन, सुखावन, भिगोवन, दूहन, तपावन, जमावन, बिलोवन, पीसन, लाटन, तलन, परसन, परछान, वादन, गायन, बजावन, बुनन, पेरन, ओढ़न, बिछावन, हलन, बखरन, बोवन, चलन, विश्रामन, भजन, कीर्तन, लिखन, पढ़न आदि-आदि से नाता रखने वाली इतनी शारीरिक भंगिमाएँ क्रियाएँ हैं कि आदमी को समय न मिले। पर आधुनिक सभ्यता ने डेंडलाते बिस्तर-तोड़ आदमी पैदा किए। पोस्ती (आलसी) लोगों के झुंड-के-झुंड खड़े कर दिए हैं। हमारे बच्चों के हाथों से घी-लोणी (माखन) छीना गया है। हमारे बच्चों के मुख से दूध-दही-मही पोछा गया है। हरित क्रांति से घर अनाज से भले ही संपन्न हैं, पर मन विपन्न है। नीति कहीं कंदराओं-शिखरों की यात्रा पर चली गई है। राजनीति, कूटनीति, कुनीति, अनीति की धजाएँ अपने-अपने रंग-ढंग से सभ्यता के आकाश में बेखटके फहरा रही हैं। गांधी इस सभ्यता को अधर्म कहते हैं। वे यह भी कहते हैं, 'अपने ऊपर अपना राज्य हो, यही तो स्वराज्य है। और यह स्वराज्य तो अपने हाथ में ही है।'

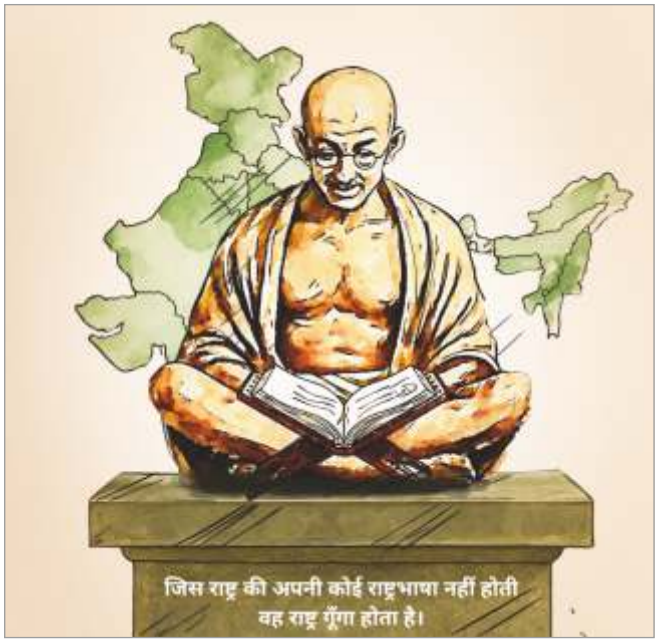

गांधी ने अस्त्र-शस्त्र के बल से दया और प्रेम के बल को अधिक शक्तिशाली अनुभव किया है। उसे जीवन में क्रियान्वित भी किया है। हथियार उठाने में तो संकट है। दया और प्रेम करने में कोई हानि नहीं है। अच्छा फल पाने के लिए साधन भी अच्छा होना चाहिए। भारत को स्वतंत्रता और स्वराज्य पाना है, तो भारतीय सभ्यता के मूल्य-मानकों को आत्मबल और राष्ट्रबल बनाना होगा। ऐसा गांधी सोचते हैं। कहते हैं। करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्त भी होती है, पर गांधी का स्वराज्य भारत को नहीं मिल सका है। सत्याग्रह या आत्मबल ही पुरुषार्थ की असली शक्ति है। गांधी बहुत गहरे में जाकर सोचते हैं, तो पाते हैं कि विश्व अस्त्र-शस्त्र के बल पर परिचालित नहीं हो रहा है, बल्कि इसके संचालन की असली ताकत सत्य, दया और आत्मबल है। बड़े-बड़े युद्धों के बाद भी दुनिया कायम है। हैजा, प्लेग, फ्लू, अकाल, बाढ़ और कोरोना जैसी महामारी के आक्रमण-संक्रमण के बाद भी दुनिया गतिमान है। अतः इसका आधार सत्यबल, आत्मबल या जिजीविषा बल है। यह बल आत्मा को सँभाले और शरीर को कसे बिना नहीं आता है। थोड़ा-सा भी अनुचित और अनपेक्षित घट जाने पर गांधी जी उपवास करने लगते हैं। उपवास तप का ही एक रूप है। तप धर्म का एक चरण है। शरीर का तप सत्य का आग्रही होता है। उससे आत्मा सबल होती है। मन दृढ़ होता है। ब्रह्मचर्य भी एक महाव्रत है। यह विकारों की रस्सियों में मन के द्वारा मजबूत गाँठ लगाने का काम करता है। सत्य का बल आता है। अभय हो जाता है।

"अभय के बिना तो सत्याग्रही की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती है। उसे सब प्रकार और सभी बातों में निर्भय होना चाहिए। धन-दौलत, झूठा मान-अपमान, नेह-नाता, राज-दरबार, चोट-मृत्यु सबके भय से मुक्त हो जाए, तभी सत्याग्रह का पालन हो सकता है।"

गांधी ने धर्मनिष्ठ व्यक्ति, सत्यनिष्ठ समाज और नीतिनिष्ठ स्वराज्य के विषय में संस्कृतिनिष्ठ चिंतन किया है। वाणी में उसे उद्भासित किया है। कर्म में परिणत किया है। इसीलिए मनुष्य के जीवन को सँवारने वाली शिक्षा-सभ्यता को श्रेष्ठ मानते हैं। वे प्रोफेसर हक्सले द्वारा कही गई शिक्षा संबंधी बातों से बहुत हद तक सहमत होते हैं, जिसमें शरीर को साधने, कर्तव्य को निभाने, बुद्धि को शांत, शुद्ध, न्यायदर्शी बनाने, इंद्रियों को वश में करने, अंतर्वृत्ति को पवित्र करने और प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने की सीख दी गई है। गांधी जी मैकाले की शिक्षा को हमारी गुलामी की नींव डालना मानते हैं। आज हम उस अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव और उससे निपजी असभ्यता को विवश-मौन होकर देख रहे हैं। गांधी कहते हैं, "प्रत्येक राष्ट्र की एक वाणी होती है। जिस राष्ट्र की अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं होती, वह राष्ट्र गूँगा होता है। इसलिए हर हिंदुस्तानी को अपनी मातृभाषा का ज्ञान होना चाहिए। हिंदी तो सभी को आनी चाहिए।"

गांधी ने भारतीय सभ्यता को श्रेष्ठ माना, क्योंकि वह सत्य, आत्मबल और कर्मनिष्ठा पर आधारित है। धर्म की आँख से वह देखती है। नीति और कौशल के पाँवों से चलती है। कहती-सुनती है। आत्मबल और सत्याग्रह उसके सबल-निर्मल हाथ हैं। वह स्व के अधीन रहकर जगत हित करती है। यही उसका सच्चा 'स्वराज्य' है। गांधी इसी स्वराज्य के उपासक और आराधक हैं। सत्य के पुजारी को नमन।

पुस्तक मेले की उपयोगिता और महत्व

विश्व पुस्तक मेले साल में एक बार ही सही, लेकिन होते रहने चाहिए। संसारभर में पुस्तक मेले साल में अमूमन एक बार ही होते हैं। बंगाल में इसे 'बोई मेला' कहा जाता है। अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेलों में फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेला, लंदन पुस्तक मेला बहुत लोकप्रिय है और इनमें दुनियाभर के लेखक, पुस्तक विक्रेता, प्रकाशक, कॉपीराइट वाले, सब हर साल जुटते हैं। और इनमें से कइयों में तो पुस्तकप्रेमी टिकट बुक कराकर मेले में जाते हैं, अपने पसंदीदा लेखक से मिलने के लिए; कुछ तो एडवांस में टिकट बुक करा लेते हैं। मुझे याद है, स्कॉटलैंड में एडिनबरा बुक फेस्टिवल में सलमान रुश्दी को सुनने, उनसे हस्ताक्षरित प्रति लेने के लिए कैसे लोगों ने एडवांस में टिकट बुक करा लिये थे और युवाओं की खासी भीड़ उनके इर्द-गिर्द जुटी हुई थी। इसी तरह, शारजाह इंटरनेशनल बुक फेयर में साहित्य अकादेमी ने हम कुछ भारतीय कवियों को काव्यपाठ के लिए भेजा था, तब भी भारतीय, भारतप्रेमी लोग हमें सुनने के लिए वहाँ इकट्ठा हुए थे। वहाँ भी हमने पुस्तक मेले में भारी भीड़ देखी।

राजेंद्र उपाध्याय

जन्म : 20 जून, 1958, तहसील सैलाना, जिला रतलाम, मध्य प्रदेश

शिक्षा : बी.ए., एल.एल.बी., एम.ए.

संप्रति : आकाशवाणी से संयुक्त निदेशक पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : कविता-संग्रह, व्यंग्य-संग्रह, साक्षात्कार-संग्रह, गद्य-संग्रह, कहानी-संग्रह, यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित एवं विभिन्न पुस्तकों का संपादन। राजस्थान सरकार के शिक्षकों की किताब 'बादल और पतंग' का संपादन, एन.सी.ई.आर.टी. के लिए सुभद्राकुमारी चौहान पर वृत्तचित्र का निर्माण। एनबीटी से 'दीवार के पार, दुनिया अपार' शीर्षक से एक यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9953320721

ईमेल– rajendra.upadhyaya58@gmail.com

पुस्तक मेलों की एक तो सबसे बड़ी उपयोगिता ये है कि एक ही छत के नीचे विभिन्न प्रकाशकों की महत्वपूर्ण किताबें देखने को मिल जाती हैं, जो अन्यथा संभव ही नहीं है। विभिन्न शहरों और विदेशों तक से प्रकाशक आते हैं और अपनी किताबें पाठकों को सुलभ कराते हैं। अचानक आपके हाथ में कोई भूली-बिसरी किताब आ जाती है, जिसे आप बरसों से पढ़ने की तमन्ना रखते थे और वो मिलती नहीं थी। ऐसे ही, कुछ किताबें इतनी खूबसूरत छपी होती हैं कि उसको रखने की इच्छा होती है। किसी नए लेखक की किताब भी आप हाथ में लेकर उलटते-पुलटते हैं और खरीदते हैं, तो वो आपको बहुत अच्छी लगने लग जाती है और आप उस लेखक से जुड़ जाते हैं और उसे बार-बार पढ़ना चाहते हैं।

ऐसे ही, कोई दूर शहर से आया लेखक आपके सामने खड़ा हो जाता है पुस्तक मेले में और आप हैरान रह जाते हैं, अरे, ये तो वही हैं, जिनसे हम मिलना चाहते थे! अन्यथा आप उनसे कैसे मिल पाते? पुस्तक मेला न होता तो कहाँ आप उनके शहर जाते और कहाँ वे आपके शहर आते! यहाँ तो सब कुछ एक ही छत के नीचे, एक ही आसमान के नीचे सहज उपलब्ध हो जाता है।

पुस्तक मेले, पुस्तकें मुझमें सालभर के लिए उजास भर देती हैं। साल के ये कुछ दिन मेरे लिए बहुत बेशकीमती होते हैं। ठंड होती है, पर ठंड की परवाह न करके, लगभग रोज ही मैं पुस्तक मेले में जाता हूँ। हालाँकि, भारत मंडपम् (प्रगति मैदान) मेरे घर से दूर है, मेट्रो बदलनी पड़ती है, फिर भी एक नई ऊर्जा, नई उमंग के लिए यह जरूरी है। लेखक आपको प्रेरणा देते हैं, किताबें आपको प्रेरणा देती हैं, यात्रा-वृत्तांत घूमने की प्रेरणा देता है, जीवनियाँ बताती हैं कि कैसे-कैसे महान लोग, किन-किन संकीर्ण पगडंडियों से गुजरे, कैसे कंटकाकीर्ण मार्गों पर उन्होंने फूल खिलाए।

पुस्तक मेलों से कई लोगों को रोजगार भी मिलता है। कई लोग इस व्यवसाय से अपनी आजीविका चलाते हैं। बड़े-बड़े पुस्तक व्यवसायी तो होते ही हैं, दैनिक सेल्समैन, काउंटर पर खड़े लोग, लड़के-लड़कियाँ, पुस्तकों को ढोने, लाने, ले जाने वाले मजदूर आदि साल में एक बार ही सही, ठीक-ठाक कमाई कर लेते हैं।

पुस्तक मेले विद्यार्थियों के लिए विशेष फलदायी होते हैं। पुस्तक मेले में उन्हें उनकी मनपसंद पुस्तकें, पाठ्यक्रम की पुस्तकें, आलोचनात्मक ग्रंथ, शोधात्मक पुस्तकें, शब्दकोश आदि मिल जाते हैं। दिल्ली एक बहुभाषिक शहर है। यहाँ बंगाल के, केरल के, तमिलनाडु के, महाराष्ट्र के लोग भी बड़ी संख्या में रहते हैं। वे अपनी भाषा में, अपनी पसंद की पुस्तकें, अपने पसंदीदा लेखक की, एक ही छत के नीचे पा लेते हैं। उन्हें बाहर से मँगाने की जरूरत नहीं पड़ती।

पुस्तक मेले केवल लेखकों के ही काम के नहीं हैं, यहाँ बच्चों की, महिलाओं की पसंद की

किताबें भी बड़ी संख्या में मिलती हैं। बच्चों की कॉमिक्स की किताबें, खेल-खेल में कुछ सीखने की किताबें मिल जाती हैं। महिलाओं के लिए कुकिंग की, रेसिपी की, सिलाई-कताई, बुनाई की किताबें भी सहज उपलब्ध हो जाती हैं। बुजुर्गों के लिए योग और दिनचर्या और स्वास्थ्य संबंधी किताबें भी उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध होती हैं।

पुस्तक मेले में यह सही है कि सब लोग खरीदने नहीं जाते, कुछ पिकनिक मनाने भी जाते हैं, खाने-पीने, मौज करने भी जाते हैं, पर उनमें भी कुछ पुस्तकों को देखने, उलटने-पुलटने की भूख जाग जाती है और उनके बच्चे भी कुछ पुस्तकें खरीदने की जिद पकड़ लेते हैं और इस तरह पुस्तकों की खरीद-बिक्री होती है। यह सही है कि मोबाइल, इंटरनेट आदि की सुविधा ने पुस्तकों से पाठकों का ध्यान बँटाया-हटाया है, पुस्तकों की कमी को कुछ समय तक इन्होंने दूर करने में भूमिका अवश्य निभाई है। अमेजन पर भी मनपसंद लेखक की मनपसंद पुस्तकें घर बैठे मँगा सकते हैं, पर इससे वह वातावरण, वह उमंग, वह उत्साह नहीं मिल पाता है कि बूढ़े भारत में भी नई जवानी आ जाए।

पाठकों के पास समय की कमी है, दौड़-भाग की दुनिया है, पुस्तकें रखने की जगहें कम पड़ रही हैं। ये सब तो है, फिर भी, पुस्तकों की दुनिया में नए-नए प्रकाशक आ रहे हैं, नए-नए लेखक आ रहे हैं। पुस्तक मेले में कई प्रकाशकों के काउंटरों पर मैंने देखा, पाठकों, खरीदारों की भीड़ बढ़ती ही जा रही है और लोगबाग हाथ में किताबें लिये काउंटर पर खड़े बिल बनवाने के लिए अपनी बारी के इंतजार में हैं। ये सब मोबाइल, इंटरनेट की दुनिया में ही तो हो रहा है! ये सब पुस्तकों के भविष्य की ओर अच्छा संकेत है।

कुछ छोटे प्रकाशकों के पास उतनी स्तरीय पुस्तकें नहीं होती हैं; कविता, कहानी साहित्य ही अधिक होता है। जिन प्रकाशकों के पास पाठकों की बदलती रुचि के हिसाब से पुस्तकें नहीं होती हैं, ज्ञान-विज्ञान की अन्य शाखाओं की पुस्तकें नहीं होती हैं उन प्रकाशकों के पास खरीदार नहीं जाते। तब वे प्रकाशक मायूस हो जाते हैं, उन्हें अपनी लागत निकालना तक मुश्किल हो जाता है। वे अपने खर्चे, स्टॉल, स्टाफ आदि का वेतन आदि का रोना रोते रहते हैं—स्टॉल महँगे हो गए हैं, लेखक, पाठक आते हैं, चाय पीकर चले जाते हैं, फोटो खिंचाते हैं, अपनी किताब फ्री में ले जाते हैं, आदि-आदि। अब ये सब तो चलता रहता है। पुस्तक भी व्यवसाय है और उसमें लाभ-हानि होती रहती है। इससे मायूस होने की जरूरत नहीं है। एक पुस्तक मेले में नहीं बिकी तो दूसरे में बिक सकती है। इसलिए प्रकाशकों को भाग लेना चाहिए।

मेरे लिए तो साल के कुछ दिन उत्सव की तरह होते हैं, जो मेरे भीतर की उदासी को कुछ हद तक पाट देते हैं, पुस्तक मेले के दौरान पता नहीं कहाँ से मुझमें इतनी ऊर्जा आ जाती है कि मैं रोज सुबह तैयार होकर जाता हूँ और शाम को सबसे मिल-मिलाकर चार-पाँच या कुछ अधिक किताबें झोले में डालकर घर आ जाता हूँ। जब पुस्तक मेला एक दिन खत्म हो जाता है, जैसे हर चीज एक-न-एक दिन खत्म होती ही है, तो मैं अचानक उदास हो जाता हूँ। लगता है, कहीं कुछ छूट गया है, कुछ कम हो गया है जिंदगी में, अब कल से कहाँ जाएँगे? कहाँ किसको गले लगाएँगे? मेरी उदासी और बढ़ जाती है। किंतु किताबों की खुशबू कभी कम न होगी, यह तो है। इस संदर्भ में मेरी 'पुस्तकों के बीच' शीर्षक कविता का यहाँ उल्लेख करना समीचीन होगा—

कभी-कभी मैं जाता हूँ लाइब्रेरी में
जहाँ लोग चुप रहते हैं
मगर किताबें बोलती हैं—हमें पढ़ो, हमें पढ़ो
हमें पढ़े बगैर मत जाना तुम

तुम्हें पढ़ने के लिए मुझे चाहिए
लगभग उतने ही बरस
जितने तुम्हें लिखने में किसी को लगे होंगे
कभी-कभी मैं जाता हूँ लाइब्रेरी में
लाता हूँ किताबें
जो पहले ही पढ़ी जा चुकी होती हैं
एक बार नहीं, कई-कई बार पढ़ी जा चुकी होती हैं

मुझे अच्छी लगती हैं वे किताबें
जो एक बार नहीं, कई-कई बार पढ़ी जा चुकी होती हैं
उनमें होती है ऊँगलियों और अँगूठों की गंध
कामकाजी लोगों के अमिट हस्ताक्षर
जो अकसर पसीने से या कोयले से किए होते हैं

मुझे याद आती है उन चेहरों की
जो भले ही खूबसूरत न हों
लेकिन अच्छे-भले लगते हैं पढ़ते वक्त
उन टेढ़े-मेढ़े नाक वाले चेचक के दाग वाले चेहरों पर
अकसर कैसी तो चमक आ जाती है
जब वे एक उपन्यास में पाताल तक डूबे होते हैं

एक बच्चा दुगुना खूबसूरत हो जाता है
जब वह एक किताब के परी संसार में खोया होता है
एक बच्ची जब खाना-पीना सब भूल
एक किताब में खो जाती है
तो वह 'एलिस इन वंडरलैंड' हो जाती है

वे भले ही स्त्री या पुरुष हों
गँवार हों या पढ़े-लिखे हों
किसी भी जात-पाँत के मानने वाले हों
वो उस वक्त दुनिया के सबसे पवित्र
और सबसे उजले काम में लगे होते हैं
वे उस वक्त गरीब होकर भी
सबसे अमीर होते हैं
जब वे एक किताब के साथ सफर करते हैं
एक किताब की हसीन सुबह में
उनकी सारी अँधियारी रातें कट जाती हैं।

राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ति पर स्मरणोत्सव

'वंदे मातरम्', यह केवल दो शब्दों का नारा नहीं, अपितु एक ऐसी दिव्य ध्वनि है, जिसने भारत के स्वाधीनता संग्राम में करोड़ों देशभक्तों के हृदय में देशप्रेम की ज्वाला जलाई। यह गीत उस युग की पहचान बना, जब भारत अंग्रेजी दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम और त्याग की भावना का संचार करने वाला यह गीत भारतीय राष्ट्रवाद का प्रथम घोष बना। आज स्वतंत्रता के दशकों बाद भी 'वंदे मातरम्' भारतीय एकता, गौरव और आत्मबल का प्रेरक प्रतीक है।

भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ण होने (07 नवंबर, 2025) को एक स्मरणोत्सव के रूप में वर्षभर मनाने का निर्णय लिया है।

'वंदे मातरम्' की रचना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'वंदे मातरम्' की रचना बाँग्ला उपन्यासकार एवं कवि बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय (जन्म 26 जून, 1838 - निधन 08 अप्रैल, 1894) ने देवी काली के अवतार के रूप में मातृभूमि की स्तुति के रूप में जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन 07 नवंबर, 1875 को की थी। उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी से सत्ता अपने हाथ में लेने पर ब्रिटिश सरकार ने 'गॉड सेव द क्वीन' को गाना अनिवार्य कर दिया था। इससे क्षुब्ध होकर बंकिम चंद्र ने यह राष्ट्रगीत भारतमाता की स्तुति और उसकी शक्तियों को प्रतिबिंबित करते हुए लिखा था। पहली बार यह गीत साहित्यिक पत्रिका 'बंग दर्शन' में उनके उपन्यास 'आनंदमठ' के धारावाहिक प्रकाशन के एक भाग के रूप में प्रकाशित किया गया था। उस समय अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियाँ भारतीय जनमानस को निराश कर रही थीं। लोग गुलामी की जंजीरों में बँधे थे, आत्मगौरव और स्वाभिमान लुप्त हो रहे थे। वंदे मातरम् स्त्रोत के रूप में भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया। बंकिम चंद्र इन पवित्र शब्दों को लिखते हुए भारत की गहनतम सभ्यतागत जड़ों से प्रेरणा ले रहे थे। वे अथर्ववेद के उद्घोष 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' से लेकर देवी माहात्म्य में विश्वमाता के आह्वान को आत्मसात कर रहे थे। 'वंदे मातरम्' की महत्ता इससे भी समझी जा सकती है कि उसे राष्ट्रीय ध्वज के प्रारंभिक स्वरूप में भी स्थान मिला। सन् 1900 तक 'वंदे मातरम्' (माँ मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ)

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'

जन्म : 25 जुलाई, 1951, सीतापुर (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन : 'राजा टोडरमल', 'दानवीर भामाशाह', 'नर नारायण नरोत्तम' (तीनों खण्डकाव्य), 'बाल रश्मि', 'पर्यावरणीय बाल कविताएँ', 'विज्ञान बाल कविताएँ', 'अवधी बाल कविताएँ', 'फुर्र-फुर्र' सहित लगभग दो दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 40 वर्षों से रचनाओं का सतत प्रकाशन। आकाशवाणी लखनऊ से बाल कविता तथा वार्ता प्रसारित।

सम्मान : काव्य रत्न सम्मान (2017); उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ से सोहनलाल द्विवेदी बाल कविता सम्मान (2019); साहित्य गौरव सम्मान (2020), गुणाकरमुले विज्ञान रत्न सम्मान (2021) सहित लगभग पैंतीस साहित्य सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त।

संप्रति : डाक विभाग से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9956087585
ईमेल– gsvaish51@gmail.com

अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता सेनानियों का नारा बन गया था और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेताओं ने इसे लोकप्रिय बनाया।

'वंदे मातरम्' का पाठ और निहितार्थ

यह गीत भारत भूमि की भौतिक सुंदरता के साथ उसकी आध्यात्मिक महिमा का भी वर्णन करता है। यह केवल भूमि की नहीं, अपितु संस्कृति, शक्ति और मातृत्व की आराधना है। 'वंदे मातरम्' केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, बंकिम चंद्र द्वारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रथम उद्घोषणा है। स्वीकृत राष्ट्रगीत के गायन की अवधि लगभग 1 मिनट 9 सेकेंड है।

संस्कृत से जन्मा राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्'

बंकिम चंद्र का 'वंदे मातरम्' गीत उनके प्रसिद्ध बाँग्ला उपन्यास 'आनंदमठ' में अंतर्निहित है। उपन्यास बाँग्ला भाषा में होते हुए भी 'वंदे मातरम्' का स्वर और आत्मा संस्कृत भाषा में गूँजते हैं। बंकिम चंद्र ने भलीभाँति समझ लिया था कि भारत की सांस्कृतिक चेतना का मूल स्रोत संस्कृत है। अतः उन्होंने जब मातृभूमि के गौरव का गीत रचा, तो उसका आरंभ और समापन संस्कृत में किया है, 'वंदे मातरम्'। सुजलाम् सुफलाम्... वरदाम् मातरम्। इस गीत का मध्यांश बाँग्ला भाषा में है, जिससे यह जनभाषा से जुड़ा रहा। बंकिम चंद्र की यह दूरदृष्टि अद्भुत थी कि उन्होंने संस्कृत को राष्ट्रगीत की आत्मा और बाँग्ला को उसकी वाणी बनाया। भाषाशास्त्री बाँग्ला को संस्कृत के पूर्णतः सन्निकट बताते हैं, जिसमें सैकड़ों शब्द संस्कृत से यथावत् उतर आए हैं। बंकिम चंद्र ने इस गीत के माध्यम से सिद्ध किया कि संस्कृत कोई प्राचीन या जड़ भाषा नहीं है, अपितु भारत की जीवित आत्मा है।

भारतीय संगीत, संस्कृति से रससिक्त है राष्ट्रगीत

'वंदे मातरम्' की प्रथम स्वरलिपि रवींद्रनाथ टैगोर के संगीत गुरु यदुनाथ भट्टाचार्य ने तैयार की थी, जिसे पहली बार गुरुदेव ने कलकत्ता के बिन स्क्वेयर में कांग्रेस अधिवेशन में 28 दिसंबर, 1896 को गाया। रवींद्रनाथ की भाँजी गायिका सरला देवी चौधरानी ने भी इसे 1905 में रवींद्र संगीत में गाया। बाद में इसको अनेक प्रसिद्ध गायक-गायिकाओं ने स्वर दिया, किंतु पंडित बीडी पलुस्कर द्वारा गाया 'वंदे मातरम्' बाद में बहुत लोकप्रिय हुआ। मास्टर कृष्णराव ने सतत संगीत-साधना करके 'वंदे मातरम्' की तीन अलग-अलग विधाओं में बजायी गई ध्वनि मुद्रिकाएँ—संचलन गीत, आम सलामी और राष्ट्रगीत तैयार कीं। उनके प्रयासों से, बाद में, 'वंदे मातरम्' को राष्ट्रगीत की मान्यता मिली।

खंडित क्यों किया गया 'वंदे मातरम्' गीत को

वर्ष 1896 में कांग्रेस के कोलकाता (तब कलकत्ता) अधिवेशन में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने इसका गायन किया, लेकिन मौलाना मोहम्मद अली जौहर जब कांग्रेस के अध्यक्ष बने, तो काकीनाडा अधिवेशन (1923) में उन्होंने 'वंदे मातरम्' का विरोध कर दिया। इससे पहले के सभी अधिवेशनों में उद्घाटन के समय संपूर्ण 'वंदे मातरम्' का गायन होता रहा था। यहाँ भी परंपरागत रूप से 'वंदे मातरम्' के गायन के लिए प्रख्यात शास्त्रीय गायक विष्णु दिगंबर पलुस्कर को बुलाया गया था। गायन आरंभ होते ही अध्यक्षता कर रहे मोहम्मद अली जौहर ने खड़े होकर इसे बंद करने के लिए कहा। लेकिन पं. पलुस्कर ने इसका गायन जारी रखा। मौलाना जौहर मंच छोड़कर चले गए। संकीर्ण राजनीतिक कारणों से उसका बेतुका विरोध हुआ। इसके बाद एक कमेटी बनाकर गीत के कई अंगों को काट दिया गया। इस कमेटी की रिपोर्ट को 1937 के कलकत्ता अधिवेशन में स्वीकार कर लिया गया। इस रिपोर्ट के आधार पर केवल पहले दो छंद ही स्वीकार किये गए। साथ ही इसके अनिवार्य गायन से कुछ लोगों को मुक्ति दे दी गई।

संविधान सभा ने 24 जनवरी, 1950 को प्रथम दो छंदों को (संपूर्ण गीत के शेष चार छंदों को काटकर) राष्ट्रगीत की मान्यता प्रदान की, किंतु फिर भी एक वर्ग द्वारा इसके विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया गया। इस खंडित 'वंदे मातरम्' के गान को भी कुछ संकीर्ण सोच के लोगों द्वारा संसद में अस्वीकार किया गया।

'वंदे मातरम्' का प्रभाव

बंकिम चंद्र ने केवल काव्य नहीं लिखा, उन्होंने राष्ट्र के सोये हुए आत्मा को जगाने का संकल्प लिया। 'सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम् शस्यश्यामलाम् मातरम्' की पंक्ति ने भारतीय मानस में चेतना का संचार किया। इस एक पंक्ति में भारत की समृद्धि, सौंदर्य और शक्ति एक साथ मूर्तिमान हो उठे।

सन् 1905 के बंग-भंग आंदोलन के समय 'वंदे मातरम्' एक गीत नहीं रहा, अपितु इसकी गूँज विद्यालयों, सभाओं, जुलूसों और स्वतंत्रता सेनानियों की गतिविधियों में सुनाई देती थी। फाँसी के तख्ते पर चढ़ते क्रांतिकारियों के होंठों पर अंतिम उच्चारण भी 'वंदे मातरम्' ही रहता था।

'वंदे मातरम्' से प्रभावित होकर लाला लाजपत राय ने लाहौर में 'वंदे मातरम्' नाम से एक पत्रिका निकाली। वर्ष 1905 में स्वर्गीय हीरालाल ने पहली बार राजनीतिक विषय पर फिल्म बनाई, जिसका अंत 'वंदे मातरम्' गान से हुआ। वर्ष 1907 में भीकाजी कामा ने जर्मनी में पहला तिरंगा फहराया, जिसके मध्य में 'वंदे मातरम्' लिखा था। 1976 में भारत सरकार ने एक टिकट जारी किया, जिसमें 'वंदे मातरम्' गीत की कुछ पंक्तियाँ लिखी हुई थीं।

सन् 1894 में महर्षि अरबिंद घोष ने बंकिम चंद्र के राष्ट्रगीत की प्रशंसा करते हुए कहा था कि यह रचना न केवल कालजयी होगी,

अपितु भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण और नवनिर्माण के लिए प्रेरणा पुंज का काम करेगी–

अपने एक पत्र में बंकिम बाबू ने लिखा था–

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि मेरे सभी कार्य गंगा में बहा दिए जाएँ। यह श्लोक ही अनंतकाल तक जीवित रहेगा। यह एक महान गान होगा और लोगों के हृदय को जीत लेगा।'

वर्ष 1896 में रवींद्रनाथ टैगोर ने 'वंदे मातरम्' को धुन में पिरोया और कलकत्ता अधिवेशन में इसे गाया, जिससे इसे वाणी और अमरता प्राप्त हुई। तमिलनाडु में सुब्रह्मण्यम भारती जी ने इसका तमिल में अनुवाद किया और पंजाब में क्रांतिकारियों ने इसे गाते हुए ब्रिटिश शासन को खुली चुनौती दी। इसने उदारवादियों और क्रांतिकारियों तथा विद्वानों और नाविकों तक को एकजुट किया।

स्वतंत्रता संग्राम में 'वंदे मातरम्' की भूमिका–

(क) स्वदेशी आंदोलन का उद्घोष

वर्ष 1905 में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया। यह विभाजन अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति का परिणाम था। बंगाल के लोगों में गहरा असंतोष फैल गया। उसी समय 'वंदे मातरम्' आंदोलन का उद्घोष बनकर उभरा। इस प्रकार 'वंदे मातरम्' स्वदेशी आंदोलन (1905-1908) की आत्मा बन गया।

(ख) स्वतंत्रता सेनानियों का प्रेरक गीत

अरविंद घोष, लाला लाजपत राय, बिपिनचंद्र पाल, बाल गंगाधर तिलक जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने इसे 'राष्ट्रीय मंत्र' की संज्ञा दी। वर्ष 1907 के कांग्रेस अधिवेशन (कलकत्ता) में यह गीत आधिकारिक रूप से गाया गया और इसे भारत का राष्ट्रीय गीत होने की मान्यता प्राप्त हुई।

(ग) ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजागरण

'वंदे मातरम्' ने जनसामान्य में यह चेतना फैलाई कि देश केवल भूमि नहीं, माँ के समान पूज्य है। इस विचार ने राष्ट्रवाद को भावनात्मक आधार दिया।

(घ) क्रांतिकारियों की प्रेरणा

कई क्रांतिकारी संगठन, जैसे अनुशीलन समिति, युगांतर दल आदि के सदस्य 'वंदे मातरम्' को अपने संगठन का नारा मानते थे। अशफाक उल्ला खाँ, तिरुपुर कुमारन, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद , बटुकेश्वर दत्त, राजगुरु, खुदीराम बोस, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों की सभा और प्रदर्शन 'वंदे मातरम्' के जयघोष से आरंभ होते थे। 'वंदेमातरम्' का मंत्र गदर पार्टी के क्रांतिकारियों के साथ कैलिफोर्निया पहुँच गया। यह आजाद हिंद फौज में भी गूँजा, जब नेताजी के सैनिक सिंगापुर से मार्च कर रहे थे। इसी तरह, यह 1946 में रॉयल इंडियन नेवी की क्रांति में भी गूँजा, जब भारतीय नाविकों ने ब्रिटिश युद्धपोतों पर तिरंगा फहराया।

वर्तमान में 'वंदे मातरम्' की प्रासंगिकता

(क) राष्ट्रीय एकता का प्रतीक

'वंदे मातरम्' हमें यह याद दिलाता है कि हम सब एक ही मातृभूमि की संतान हैं। यह गीत राष्ट्रीय एकता और अखंडता का प्रतीक है।

(ख) पर्यावरणीय चेतना का संदेश

गीत की पंक्तियाँ–'सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्'–हमें प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा देती हैं।

(ग) राष्ट्रगौरव और आत्मनिर्भरता का भाव

'वंदे मातरम्' आत्मगौरव का संदेश देता है। यह बताता है कि हमारी भूमि समृद्ध, शक्तिशाली और आत्मनिर्भर है।

(घ) युवाओं के लिए प्रेरणा

आज के युवा जब वैश्वीकरण के प्रभाव में अपनी पहचान खोज रहे हैं, यह गीत उन्हें अपनी जड़ों की ओर लौटने की प्रेरणा देता है। यह गीत भारतीय प्रवासी समुदाय के लिए भी भारतीयता की पहचान बन चुका है।

आज हम राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्' के 150 वर्ष पूरे होने पर स्मरणोत्सव के रूप में पूरे देश में वर्षभर उत्सव मना रहे हैं, जिससे देश की युवा पीढ़ी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार को आत्मसात कर सके।

माननीय प्रधानमंत्री ने कहा है–

"भारत का राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्' का पहला शब्द ही हमारे हृदय में भावनाओं का उफान ला देता है। हमें 'वंदे मातरम्' के 150 वें वर्ष के उत्सव को यादगार बनाना है।"

150 वर्षों बाद भी इस गीत की पंक्तियाँ आज भी उतनी ही जीवंत हैं, जितनी स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में थीं। यह गीत भारत के स्वतंत्रता-संगीत का अमर स्वर है। यह गीत आज भी कहता है–

"हे भारत माता, तुझे वंदन है, तुझे नमन है।"

माननीय राष्ट्रपति सुश्री द्रौपदी मुर्मू ने कहा–

"भारत का राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्' देश के लोगों की भावनात्मक चेतना और एकता का प्रतीक है। आइए! हम सभी देशवासी यह दृढ़ संकल्प लें कि हम इस गीत की भावना के अनुरूप भारतमाता को सुजला, सुफला और सुखदा बनाए रखेंगे।"

आज जब देश 'विकसित भारत @2047 के लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है, तब 'वंदे मातरम्' पुकारना केवल इतिहास की स्मृति नहीं, अपितु भविष्य की प्रेरणा है। राष्ट्र की आत्मा को जाग्रत करने का कार्य 'वंदे मातरम्' ने किया और आज भी कर रहा है। यदि हर भारतीय इस मंत्र के अर्थ और भाव को जीवन में उतार लें, तो देश न केवल आर्थिक, अपितु सांस्कृतिक और नैतिक रूप से भी विश्वगुरु बनने की दिशा में अग्रसर होगा।

जागृत मतदाताओं की नींव पर टिकी लोकतंत्र की गरिमा

हाल में बिहार में विधानसभा के चुनावों में 66.91 फीसदी वोटरों ने रिकार्ड मतदान के साथ कई संकेत दिए। कुछ इलाकों में तो 70 से 76 फीसदी तक मतदान हुआ। करीब 71.6 फीसदी महिला मतदाताओं ने लोकतंत्र के उत्सव में 62.8 फीसदी वोट डालने वाले पुरुषों को काफी पीछे छोड़ दिया। 1951-52 के बाद बिहार विधानसभा के चुनाव में एक नया रिकॉर्ड बना।

अरविंद कुमार सिंह

जन्म : 07 अप्रैल, 1965।

वरिष्ठ लेखक और पत्रकार। 'जनसत्ता', 'अमर उजाला', 'इंडियन एक्सप्रेस लखनऊ' समेत कई पत्र-पत्रिकाओं में सेवाएँ दीं। रेल मंत्रालय में सलाहकार और भारतीय संसद के राज्यसभा टीवी में संसदीय मामलों के संपादक के रूप में काम किया। शिक्षा मंत्रालय के शिक्षा पुरस्कार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के चौधरी चरण सिंह पुरस्कार और भारतीय प्रेस परिषद् के ग्रामीण पत्रकारिता पुरस्कार समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित 'भारतीय डाक', 'डाक टिकटों में भारत दर्शन' और 'भारत में जल परिवहन' समेत अनेक पुस्तकों के लेखक। एनसीईआरटी और कई राज्यों के पाठ्यक्रमों में रचनाएँ शामिल। पीएम युवा स्कीम के मेंटर के रूप में योगदान। राज्यसभा की मीडिया सलाहकार समिति के सदस्य भी रहे।

संपर्क : मोबाइल– 9810082873
ईमेल– arvindksingh.rstv@gmail.com

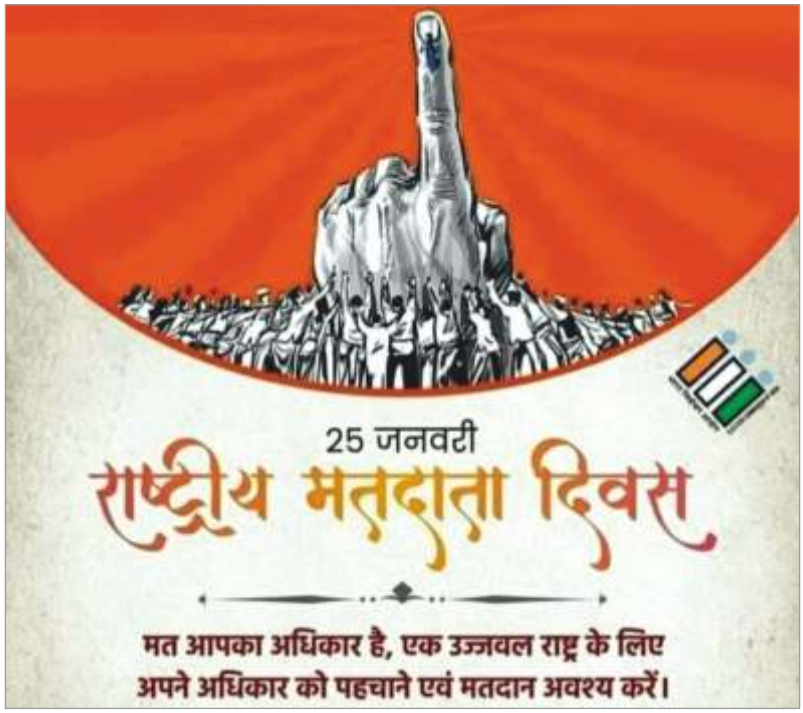

2026 में असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, केरल और पुडुचेरी में होने वाले विधानसभा चुनावों में मतदाता किस जोश-खरोश के साथ मतदान करेंगे, यह भविष्य पर निर्भर है। बिहार के बाद दूसरे चरण में इन राज्यों समेत कुल 12 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मतदाताओं के गहन पुनरीक्षण का काम घर-घर सत्यापन के साथ चल रहा है। आयोग ने स्पष्ट किया है कि इस पूरे अभियान का लक्ष्य त्रुटिरहित मतदाता सूची तैयार करना है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी पात्र मतदाता न छूटे और अपात्र बाहर हो। इसके लिए आयोग ने राजनीतिक दलों से सहयोग भी माँगा है। इसी गहमागहमी के बीच 2026 में 16वें राष्ट्रीय मतदाता दिवस को 25 जनवरी को मनाने की तैयारी चल रही है।

राष्ट्रीय मतदाता दिवस : बढ़ता दायरा

लोकतंत्र के उत्सव में 25 जनवरी को मनाया जाने वाला राष्ट्रीय मतदाता दिवस अब बहुत अहम बन गया है। 2011 से लगातार यह दिवस मनाया जा रहा है। 1950 में प्रथम गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर इसी दिन हमारा निर्वाचन आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए संविधान के अनुच्छेद 324 (1) के तहत शक्ति प्राप्त कर अस्तित्व में आया और पहले चुनाव आयुक्त श्री सुकुमार सेन बने थे।

हालाँकि, 2011 में राष्ट्रीय मतदाता दिवस के आयोजन को जब अंतिम रूप दिया जा रहा था, तो उस दौरान युवा मतदाताओं की उदासीनता ही सबसे बड़ी चिंता का विषय थी। तब 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके नए मतदाता, मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज कराने को लेकर उदासीन थे। कुछ मामलों में उनका नामांकन स्तर 20 से 25 फीसदी तक ही था। इसलिए चुनाव आयोग ने देश भर में 1 जनवरी तक 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले सभी पात्र मतदाताओं की पहचान कर 25 जनवरी को उन्हें मतदाता फोटो पहचान-पत्र सौंपने जैसी पहल की। उनको प्रेरित किया गया। अब राष्ट्रीय मतदाता दिवस का आकार व्यापक हो चुका है। युवा मतदाताओं के अलावा कई वंचित समूहों में जागरूकता का क्रम जारी रहने से काफी बदलाव दिख रहे हैं। यह दिवस अब लोकतंत्र के उत्सव में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करने और दायित्व बोध पैदा करने का दिवस बन गया है। हर साल नयी थीम पर सरकारी संस्थाओं के साथ गैर-सरकारी संगठन और शिक्षा संस्थाएँ अभियान में शामिल हो रही हैं।

सौ करोड़ मतदाताओं की शक्ति

आज भारत का मतदाता आधार करीब 100 करोड़ तक पहुँच गया है। हमारे पंजीकृत मतदाताओं में से 21.7 करोड़ 18-29 आयु के युवा हैं। जबकि पहले आम चुनाव में मतदाताओं की संख्या 17 करोड़ के करीब थी। तबसे अब तक भारत का निर्वाचन आयोग लोकसभा के 18 आम चुनाव और 404 से अधिक विधानसभाओं, 16 राष्ट्रपतियों और 17 उपराष्ट्रपतियों का चुनाव संपन्न करा चुका है। कई नये प्रयोगों से विश्व के अनेक देशों को प्रभावित किया है। कोविड महामारी तक में संवैधानिक दायित्वों को निभाते हुए चुनाव निर्धारित समय पर हुए। हमारे तमाम मतदान केंद्र जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानों में जटिल भूगोल में बनते हैं और हर मतदाता तक पहुँच का प्रयास करते हैं।

पर यह सत्य भी है कि मतदाताओं की जड़ता टूट रही है और वे अपने अधिकारों के साथ कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग हो रहे हैं। इसमें सुव्यवस्थित मतदाता शिक्षा एवं निर्वाचक सहभागिता कार्यक्रम (स्वीप) का भी 2009 से काफी अहम योगदान माना जाता है। 'स्वीप' हर भारतीय नागरिक को एक मतदाता मानने के साथ अवयस्क बच्चों में भी जागरूकता पैदा करता है, जो भविष्य के मतदाता हैं। निर्वाचन आयोग ने देशभर की कक्षाओं में चुनावी साक्षरता लाने के लिए शिक्षा मंत्रालय के साथ नवंबर 2023 में एक समझौता-ज्ञापन पर हस्ताक्षर भी किया, जिसके तहत कक्षा 6 से 12 तक के पाठ्यक्रम प्रारूप में मतदाता शिक्षा और चुनावी साक्षरता को शामिल करने, कक्षा से मतदान केंद्रों तक पहल करके 'युवाओं में चुनावी साक्षरता के प्रति लगाव' और स्कूलों में छात्रों को उनके प्रथम मतदान के लिए तैयार करने, लोकतांत्रिक मूल्यों और लोकाचार के प्रति भाव को प्रारंभिक आयु से ही जगाने जैसे विचार समाहित हैं। इनका दूरगामी असर परिकल्पित है।

लोकतंत्र के संप्रभु हैं मतदाता

बहुत-से मतदाताओं को मतदान का अधिकार बहुत सहज बात लगती है। पर यह असाधारण अधिकार है। इसके लिए दुनियाभर में लंबा संघर्ष चला। दुनिया में कई संपन्न देशों में महिलाएँ वोट नहीं दे सकती थीं, कहीं संपत्ति और भूसंपदा की शर्त थी, कहीं केवल पढ़े-लिखे लोग वोट दे सकते थे। पर भारतीय संविधान ने योग्यता, धर्म, नस्ल, जाति या अमीर या गरीब में भेदभाव न करके सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार दिया।

भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पी बाबासाहब डॉ. भीमराव आंबेडकर ने मताधिकार को लोकतंत्र की सर्वाधिक मौलिक चीज बताते हुए मत व्यक्त किया था कि भारत के किसी भी उस नागरिक के प्रति अन्याय न हो, जो मतदाता सूची में पंजीकृत होने का पात्र है। आरंभ में संविधान में 21 वर्ष या अधिक आयु के सभी नागरिकों को मतदान का अधिकार दिया था। पर 61वें संविधान संशोधन के बाद मतदाताओं की आयु सीमा घटाकर 18 वर्ष करने के बाद तस्वीर और बदली है।

बढ़ता मतदाता आधार और जागरूकता स्तर

वयस्क मताधिकार के आधार पर 1951-52 में पहली बार 10.59 करोड़ मतदाताओं ने वोट दिया था, जबकि 2019 में 17वीं लोकसभा

के चुनाव में 61.30 करोड़ से अधिक मतदाताओं ने वोट दिया। 2024 में वोट देने वाले 64.2 करोड़ से अधिक थे। वोट डालने वाले मतदाताओं की कुल संख्या बढ़ती जा रही है। पहले चुनाव से अब तक मतदाता और साक्षरता, दोनों के आकार में 500% की वृद्धि हुई है।

पर विभिन्न दशकों का आकलन करें तो मतदान प्रतिशत में उतार-चढ़ाव होते रहे हैं। 1951-52 में हमारा मतदान प्रतिशत 46 था, जो उन दिनों के अशिक्षित मतदाताओं के हिसाब से काफी माना गया। दशकवार आँकड़ों को देखें तो 1962 और 1971 में 55%, 1980 में 57%, 1991 में 56%, 2004 में 58% और 2009 में मतदान 58.21% रहा। 1951 से 2009 के बीच केवल 1984 में सबसे अधिक 64.02% का रिकॉर्ड मतदान हुआ। पर 2014 के बाद यह 66 फीसदी पार कर गया। लोकसभा में 2014 में 66.44% मतदान हुआ जो 2019 में बढ़कर 67.4% रहा, पर 2024 में 66.07% रहा। पर यह भी सत्य है कि करीब तीस करोड़ लोगों ने 2019 में मताधिकार का प्रयोग नहीं किया था। कई नगरों में अब बाकायदा बोर्ड लगने लगे हैं कि कितने लोगों ने वोट नहीं दिया।

देश के 32 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 6,49,481 गाँव हैं और हर गाँव की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ अलग हैं। पहले कई गाँवों तक उम्मीदवारों का वोट माँगने पहुँच पाना भी कठिन होता था, पर अब वह बात नहीं है। आरंभिक चुनावों से ही ग्रामीण इलाकों में चुनाव को लोकतंत्र के विराट उत्सव के रूप में देखा जा रहा है। पचास से सत्तर के दशक तक बैलगाड़ियों पर सज-धजकर वोट डालने निकलते थे। महिलाएँ गीत गाते हुए मतदान केंद्रों में जातीं और बच्चों का उत्साह भी देखते बनता था। संचार और परिवहन के साधनों के विकास के बाद तस्वीर बदली पर उत्सव कायम है और ग्रामीण हर चुनाव में भारी उत्साह से भाग लेते हैं।

भारत और दुनिया का सबसे ऊँचा मतदान केंद्र ताशीगंग (हिमाचल प्रदेश) 15 हजार 256 फीट की ऊँचाई पर है। राज्य की राजधानी शिमला से 464 किमी दूर इस गाँव में पाँच महीने बर्फ पड़ी रहती है। केवल 62 मतदाताओं वाले इस गाँव में 2021 के लोकसभा उपचुनाव में मतदान केंद्र बना, जहाँ सौ फीसदी वोट पड़ा। 2022 के विधानसभा चुनाव में भी सौ फीसदी वोट पड़ा और 2024 में लोकसभा के चुनाव में भी 79.03% मतदान हुआ। पर यह एक उदाहरण है। गाँव आम तौर पर शहरों से पहले आम चुनाव से ही वोट देने में आगे हैं। वोट के प्रति वे अधिक जागरूक हैं और उनके कारण भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बना हुआ है। पर कई इलाकों में शहरी उदासीनता अधिक है।

वरिष्ठ मतदाताओं की शक्ति को सम्मान

देश के सबसे बुजुर्ग मतदाता श्यामसरण नेगी ने हिमाचल प्रदेश विधानसभा के चुनाव में 2 नवंबर, 2022 को आखिरी बार 34वीं बार 106 साल की उम्र में वोट डाला था। तीन दिन बाद उनका निधन हो गया। वे आजाद भारत के ऐसे पहले भाग्यशाली मतदाता थे, जिन्होंने 23 अक्तूबर, 1951 को लाइन में लगकर मतपेटी में पहला वोट डाला था। पहले वोटर की तलाश में चुनाव आयोग ने 2007 में काफी प्रयास के बाद उनको गाँव में खोज निकाला। तमाम मतदाता सूची खँगालने के बाद जब उनका पता चला तो उनके दावों और उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर पाया गया कि वे ही देश में सबसे पहले मताधिकार का प्रयोग करने वाले नागरिक हैं।

सात दशकों तक लगातार मतदान करने वाले श्री नेगी का जन्म 01 जुलाई, 1917 को हुआ था। उनका निधन हुआ तो अंतिम विदाई राजकीय सम्मान के साथ हुई। भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त भी उनके गाँव श्रद्धासुमन चढ़ाने पहुँचे। यह भारत के पहले मतदाता का नहीं, बल्कि वरिष्ठ और प्रेरक मतदाता का भी सम्मान था। देश में भारतीय मतदाताओं की विविधता भरी सूची में सौ साल से अधिक उम्र के 2.38 लाख मतदाताओं का संकलन निर्वाचन आयोग ने किया है। वहीं 80 साल से अधिक के 1.85 करोड़ मतदाताओं की सुविधा के लिए 2019 के चुनाव से पोस्टल वोटिंग का प्रबंध किया जा रहा है। मतदान से दूर रहने वाले 65 लाख से अधिक दिव्यांगजनों की देशव्यापी सूची बना कर उनके लिए सुगम्य बूथ बनाने के साथ कई विशेष श्रेणी के मतदाताओं पर ध्यान दिया जा रहा है। मतदाताओं की सुविधा के लिए अनेक नवाचारी उपाय किए जा रहे हैं।

लोकतंत्र अब परिपक्व हो चुका है। जागरूकता के स्तर बढ़ने और संचार और सूचना क्रांति के चलते चुनाव आयोग तथा राजनीतिक दलों के समक्ष कई नयी चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं। कई मुद्दों का समाधान हुआ है, पर चुनावों में धनशक्ति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। बहुत-सी विकृतियों के साथ पेड न्यूज और झूठी खबरें भी चुनावों पर असर डाल रही हैं। आदर्श आचार संहिता और मानदंडों के उल्लंघन समेत कई सवालों पर अभी भी नागरिकों की चिंताएँ कम होने के बाद भी कायम हैं। इन सारे सवालों पर भी राष्ट्रीय मतदाता दिवस पर चिंता के साथ निदान खोजने की आवश्यकता है।

महाकाव्य रामायण की वैश्विक स्वीकार्यता

भारतवर्ष की पुरातन संस्कृति और सभ्यता की गौरवशाली अनुभूतियाँ और प्रतीक विश्व के कई देशों में फैले हुए हैं। सनातन धर्म के अंतर्गत अत्यंत ही श्रद्धा से परिपूर्ण सर्वमान्य घटनाक्रम भगवान श्री विष्णु के अवतार श्रीराम का जन्म और उनकी विभिन्न लीलाएँ

महेश शर्मा

जन्म : 01 दिसंबर, 1954

शिक्षा : विज्ञान स्नातक एवं प्राकृतिक चिकित्सक

प्रकाशन : दो कहानी-संग्रह—'हरिद्वार के हरी', 'आखिर कब तक'; एक गीत संग्रह 'मैं गीत किसी बंजारे का', दो उपन्यास—'एक सफर घर आँगन से कोठे तक', 'अँधेरे से उजाले की ओर' के साथ-साथ लगभग 45 लघुकथाएँ, 80 कहानियाँ, 200 से अधिक गीत, 200 के लगभग गजलें, कविताएँ प्रकाशित। अन्य विधाओं में भी लगभग 50 लेखन कार्य। एक कहानी 'गरम रोटी' का श्रीराम सभागार दिल्ली में 'रूबरू' नाट्य संस्था द्वारा मंचन।

सम्मान : मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग से साहित्य पुरस्कार, बनारस से 'सोच्विछार' पत्रिका द्वारा ग्राम्य कहानी पुरस्कार, लघुकथा के लिए 'शब्द निष्ठा' पुरस्कार, श्री गोविंद हिंदी सेवा समिति द्वारा 'हिंदी भाषा रत्न' पुरस्कार एवं अन्य कई पुरस्कारों से सम्मानित।

संप्रति : सेवानिवृत्त बैंक अधिकारी, रोटरी क्लब अध्यक्ष रहते हुए सामाजिक योगदान, मंचीय काव्य पाठ, अन्य सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से सेवा कार्य। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9340198976

ईमेल— mahesh.k111555@gmail.com

रही हैं, जो 'रामायण' नामक महा ग्रंथ में विशद् रूप से वर्णित हैं। यह रामायण, जो मूल रूप से तो महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखी गई थी और इसके बाद में कई अन्य भाषाओं में कई आवृत्तियाँ दोहरायी गई हैं।

वाल्मीकि रामायण, संस्कृत भाषा में महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित एक महाकाव्य है, जिसमें श्रीराम की जीवन-यात्रा का वर्णन है, जिसे आदिकाव्य भी कहा जाता है। संपूर्ण काव्य लगभग 24,000 श्लोकों के रूप में अनुष्टुप छंद में लिखा गया है, जो सात सर्ग, जिन्हें 'कांड' कहा गया है, में समाहित हैं तथा इसका रचनाकाल आधुनिक विद्वानों के अनुसार, सातवीं से चौथी शताब्दी ईसा-पूर्व माना गया है। यद्यपि, धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, यह बहुत प्राचीन काल में सृजित किया गया है।

मान्यतानुसार, रामायण का घटनाकाल त्रेतायुग का माना जाता है। गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य श्री निश्चलानंद सरस्वती एवं अन्य प्रभृति संतों के अनुसार श्रीराम अवतार श्वेतवाराह कल्प के सातवें वैवस्वत मन्वंतर के चौबीसवें त्रेता युग में हुआ था, जिसके अनुसार श्रीरामचंद्र जी का काल लगभग पौने दो करोड़ वर्ष पूर्व का है। इसके संदर्भ में विचार पीयूष, भुशुण्डि रामायण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, संजीवनी रामायण एवं कुछ अन्य पुराणों से प्रमाण दिया जाता है।

महर्षि वाल्मीकि के बारे में तथ्य है कि ये कश्यप ऋषि और अदिति की बारह संतानों में से एक वरुण (प्रचेता) के पुत्र थे। इसी कारण वाल्मीकि का एक नाम प्रचेतस भी हुआ है। इनका गोत्र महर्षि भृगु का बताया गया है। हालाँकि, कुछ जगह इन्हें भृगु का छोटा भाई भी कहा गया है। भृगु ऋषि के कहने पर एक बार इन्होंने इतनी भीषण तपस्या की कि शरीर पर दीमकों ने अपनी बांबी बना ली। जब उनकी तपस्या पूर्ण हुई तो उन्हें बांबियों को तोड़कर बाहर निकाला गया। दीमक की बांबी को संस्कृत में 'वाल्मीकि' कहा जाता है और तबसे उनका नाम वाल्मीकि पड़ गया। ऐसा वर्णन है, एक बार वाल्मीकि क्रौंच पक्षी के एक जोड़े को

निहार रहे थे। वह जोड़ा प्रेमालाप में लीन था। तभी उन्होंने देखा कि एक बहेलिये ने प्रेम-मग्न क्रौंच (सारस पक्षी) के जोड़े में से नर पक्षी का वध कर दिया। इस पर मादा पक्षी विलाप करने लगी। उसके विलाप को सुनकर वाल्मीकि की करुणा जाग उठी और द्रवित अवस्था में उनके मुख से स्वतः ही यह श्लोक फूट पड़ा, जिसका अर्थ है—'हे दुष्ट, तुमने प्रेम में मग्न क्रौंच पक्षी को मारा है। जा, तुझे कभी भी प्रतिष्ठा की प्राप्ति नहीं हो पाएगी और तुझे भी वियोग झेलना पड़ेगा।' इसके पश्चात उन्हें दुख भी हुआ कि उन्होंने ऐसा क्यूँ किया। इसी अनपेक्षित दुख से दुखी महर्षि क्लांत हो रहे थे, तभी जगत पिता ब्रह्मा जी उनके पास आए। उन्होंने महर्षि को पुराण पुरुषोत्तम परात्पर प्रभु श्रीराम के यश का वर्णन करने के लिए कहा। इतना ही नहीं, ब्रह्मा जी ने यहाँ तक कहा कि तुम्हारी ऋतम्भरा प्रज्ञा उन प्रभु के चरित्र की सब प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, गूढ़-प्रकट, रहस्य-अनावृत, सभी रहस्यों को अनायास ही पढ़ और समझ सकेगी। प्रजापति ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम्हारे द्वारा प्रणीत रामायण की कोई कथा का कोई प्रसंग असत्य नहीं होगा—न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति। एक अन्य कथानुसार, नारद जी से महर्षि वाल्मीकि ने प्रश्न किया था— कोऽस्मिन्नसाम्प्रतं लोके... अर्थात् वर्तमान में कौन ऐसा है, जिसमें बल, बुद्धि, विद्या, धैर्य, सौंदर्य, क्षमा, इंद्रिय-निग्रह जैसे लोकोत्तर गुण निरंतर वास करते हों? तब नारद जी ने दशरथ पुत्र श्रीराम के बारे में वाल्मीकि को बताया था। इस प्रकार, रामायण के रचना की प्रेरणा के लिए जिन दो महान भागवतों की प्रेरणा मिलती है उसमें पहले हैं—परमभागवत देवर्षि नारद जी एवं दूसरे परम पिता ब्रह्मा। अतः ये ही रामायण की रचना के हेतु बने।

वाल्मीकि कृत रामायण में सात कांड हैं—बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, सुंदरकांड, किष्किन्धाकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड। उत्तरकांड रामकथा का उपसंहार है। इन सातों कांड में अयोध्या के यशस्वी राजा दशरथ को पुत्रेष्टी यज्ञ से प्राप्त चार पुत्र—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म, राक्षसों के संहार, जनक दुलारी सीता से पाणिग्रहण के पश्चात् पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष के वनवास और उसी दौरान सीताहरण, लंका-विजय तथा रावण-वध के उपरांत सीता, लक्ष्मण और समस्त वानरसेना के साथ राम का अयोध्या वापस आगमन होना वर्णित है। राम का भव्य स्वागत और राज्याभिषेक, अभ्यागतों की विदाई, चारों भाइयों के दो-दो पुत्र होना और रामराज्य एक आदर्श राज्य व्यवस्था की स्थापना आदि समस्त घटनाक्रम का भी विशद् वर्णन है।

वाल्मीकि रामायण में उत्तरकांड का समापन राम के महाप्रयाण के बाद ही हुआ है। महर्षि वाल्मीकि ने उत्तरकांड में रावण तथा हनुमान के जन्म की कथा, सीता का निर्वासन, राजा नृग, राजा निमि, राजा ययाति तथा रामराज्य में कुत्ते का न्याय की उपकथाएँ, लवकुश का जन्म, राम के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान तथा उस यज्ञ में उनके पुत्रों—लव तथा कुश के द्वारा महाकवि वाल्मीकि रचित रामायण गायन, सीता का रसातल प्रवेश, लक्ष्मण का परित्याग आदि का भी वर्णन किया है। लेकिन उत्तरकांड को लेकर कई तरह के विवाद भी हैं। सातवाँ उत्तरकांड प्रक्षिप्त है। तत्वमार्तंड में भी उत्तरकांड को प्रक्षिप्त माना गया है। ऐसा माना जाता है कि उत्तरकांड मूल वाल्मीकि रामायण का हिस्सा नहीं है और इसमें कई कहानियाँ बाद में जोड़ी गईं, जो अलग-अलग लेखकों द्वारा लिखी गई कहानियों को जोड़कर तैयार किया गया है। उत्तरकांड मूल रामायण का हिस्सा नहीं है, इसको लेकर कई विद्वान एकमत हैं। उसके बाद की संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य पर इस महाकाव्य का बहुत प्रभाव है तथा रामकथा को लेकर अनेक रामायण रचे गए हैं।

वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर पूज्य संत तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्य की रचना की, जो कि वाल्मीकि के द्वारा संस्कृत में लिखे गए रामायण का हिंदी-अवधी भाषा का संस्करण है। 'रामचरितमानस' में हिंदू आदर्शों का उत्कृष्ट वर्णन है, इसीलिए इसे हिंदू धर्म के प्रमुख ग्रंथ होने का श्रेय मिला हुआ है और प्रत्येक हिंदू परिवार में भक्तिभाव के साथ इसका पठन-पाठन और श्रवण किया जाता है। राम संबंधी कथानक से प्रेरित होकर श्रीभागवतानंद गुरु ने संस्कृत महाकाव्य 'श्रीराघवेंद्रचरितम्' की रचना की, जो अद्भुत एवं गुप्त कथा-प्रसंगों से भरा हुआ है। इस ग्रंथ में 20 से अधिक प्रकार के रामायणों की कथा का समावेश है।

अपने वनवास काल के दौरान भगवान श्रीराम वाल्मीकि के आश्रम में भी गए थे। भगवान वाल्मीकि को श्रीराम के जीवन में घटित प्रत्येक घटना का पूर्ण ज्ञान था। सतयुग, त्रेता और द्वापर, तीनों कालों में वाल्मीकि का उल्लेख मिलता है, इसलिए भगवान वाल्मीकि को सृष्टिकर्ता भी कहते हैं, 'रामचरितमानस' के अनुसार जब श्रीराम वाल्मीकि आश्रम आए थे, तो आदिकवि वाल्मीकि के चरणों में दंडवत प्रणाम करने के लिए वे जमीन पर डंडे की भाँति लेट गए थे और उनके मुख से निकला था—'तुम त्रिकालदर्शी मुनिनाथा, विस्व बदर जिमि तुमरे हाथा।' अर्थात् आप तीनों लोकों को जानने वाले स्वयं प्रभु हैं। ये संसार आपके हाथ में एक बेर के समान प्रतीत होता है। यह न सिर्फ भारतवर्ष में जन-जन में लोकप्रिय होकर श्रद्धा से पढ़ी जाती है, बल्कि दुनिया के अन्य कई देशों में भी कुछ भिन्नताओं को लिये हुए रामायण ग्रंथ तो उपलब्ध है ही। समय-समय पर वहाँ राम की चर्चा राम की लीलाओं का मंचन और राम के प्रति श्रद्धा युक्त वातावरण दिखाई देता है। वैसे तो श्रीराम की संपूर्ण जीवनगाथा महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में संस्कृत भाषा में सृजित की गई है, किंतु उसका देश के जन-जन तक सहज-सरल भाषा में व्यापक बनाने का कार्य गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' द्वारा किया है। किंतु वेदों से लेकर ब्राह्मण संहिताओं तक में भी राम का जिक्र आता है।

कुछ ब्रिटिश विद्वानों के मुताबिक वाल्मीकि की 'आदि रामायण' करीब 3,300 से 3,400 साल पहले लिखी गई थी, मगर राम नाम का पहला जिक्र ऋग्वेद में आता है, जहाँ उनका नाम एक यज्ञ के कुछ यजमान राजाओं के साथ लिखा गया है। ये भगवान राम ही हैं, ऐसा कहीं जिक्र नहीं है। भारत के अलावा नौ देश और हैं, जहाँ रामायण को किसी-न-किसी रूप में पढ़ा और सुना जाता है। भारत के अलावा इंडोनेशिया ऐसा देश है, जहाँ पाँच तरह की रामकथाएँ हैं, सभी नौवीं

शताब्दी की हैं। नेपाल में चार रामायणें हैं। जापान में भी रामायण का उल्लेख मिलता है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे मुगल शासकों ने भी वाल्मीकि रामायण का उर्दू में अनुवाद कराया था।

रामायण ही अकेली कहानी है, जो अलग-अलग तरह से पढ़ी और कही जाती है। दुनियाभर में 50 से अधिक भाषाओं में रामकथा लिखी गई है और चार सौ से अधिक तरह से रामकथा का वाचन किया जाता है। रामायण पर सबसे अधिक लोककथाएँ भी लिखी गई हैं। इनकी संख्या हजारों में है। अलग-अलग पात्रों पर भी कथाएँ लिखी गई हैं, जो मूल रामायण से अलग हैं। दशरथ, सीता, कौशल्या, लक्ष्मण, भरत, हनुमान ऐसे पात्र हैं, जिन पर सबसे अधिक कहानियाँ लिखी गई हैं।

खुद प्रो. कामिल बुल्के ने अपनी किताब 'रामकथा' में ऐसी 400 से अधिक किताबों का संदर्भ लिया है। ऋग्वेद में रामायण के चार पात्रों का उल्लेख मिलता है। इक्ष्वाकु, दशरथ, राम और सीता, इन चारों का उल्लेख ऋग्वेद में अलग-अलग जगह मिलता है और ये कहीं भी स्पष्ट नहीं है। इक्ष्वाकु, दशरथ और राम के नाम अलग-अलग राजा के रूप में हैं। वहीं, सीता को कृषि की देवी कहा गया है। वाल्मीकि रामायण की रचना को लेकर तीन अलग-अलग दावे हैं। ब्रिटिश इतिहासविद् जी. गोरेसिया (रिसर्च—रामायण, भाग-10) के मुताबिक वाल्मीकि ने ही आदि रामायण की रचना की है, जो ईसा-पूर्व 12वीं से 14वीं शताब्दी की यानी करीब 3,400 साल पुरानी है। वहीं एक और इतिहासविद् डी.ए. डब्ल्यू. श्लेगेल का मानना है कि रामायण का रचनाकाल ईसा-पूर्व 11वीं से 13वीं शताब्दी है, यानी 3,300 साल पहले का है। ये शोध उन्होंने 'जर्मन ओरिएंटल' जर्नल में प्रकाशित किया था। प्रो. कामिल बुल्के ने अपनी किताब 'रामकथा का इतिहास' में लिखा है कि सारे प्रमाण देखने के बाद ये कहा जा सकता है कि रामायण का रचनाकाल ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी, यानी करीब 2,400 साल पुराना है।

प्रो. कामिल बुल्के ने अपनी किताब 'रामकथा का इतिहास' में लिखा है कि रामकथा का सबसे पहला उल्लेख 'दशरथ जातक कथा' में मिलता है, जो ईसा से 400 साल (अब से 2,600 साल) पहले लिखी गई थी। इसके बाद ईसा से 300 से 200 साल पूर्व का काल वाल्मीकि रामायण का मिलता है। वाल्मीकि रामायण को सबसे ज्यादा प्रामाणिक इसलिए भी माना जाता है, क्योंकि वाल्मीकि भगवान राम के समकालीन ही थे और सीता ने उनके आश्रम में ही लव-कुश को जन्म दिया था। लव-कुश ने ही राम के दरबार में वाल्मीकि की लिखी रामायण सुनाई थी। 'दशरथ जातक' में रामकथा की घटनाओं का वर्णन है, जो इतना विस्तृत नहीं है, लेकिन ये कहा जा सकता है कि दशरथ जातक ही रामकथा की प्रेरणा रही है।

वाल्मीकि रामायण पहली पूर्ण और प्रामाणिक कथा है, लेकिन तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' दुनियाभर में सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली रामकथा है। सन् 1576 के आसपास लिखी गई 'रामचरितमानस' वाल्मीकि रामायण की मूल कहानी पर ही लिखी गई है, लेकिन इसकी भाषा संस्कृत के बजाय अवधी है। रामकथा सिर्फ संस्कृत या हिंदी ही नहीं, उर्दू और फारसी में भी लिखी गई है। 1584 से 1589 के बीच अकबर ने अल बदायूँनी से वाल्मीकि रामायण का उर्दू अनुवाद कराया था। जहाँगीर के शासनकाल में तुलसीदास के समकालीन गिरिधरदास ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद फारसी में किया था। इसी काल में मुल्ल मसीही ने 'रामायण मसीही' भी लिखी थी। शाहजहाँ के समय 'रामायण फैजी' लिखी गई। 17वीं शताब्दी में 'तर्जुमा-ए-रामायण' भी लिखी गई। ये सभी वाल्मीकि रामायण के ही उर्दू अनुवाद थे। भारत में सबसे अधिक रामकथाएँ ओड़िया भाषा में लिखी गई हैं। ओड़िशा में 13 तरह की रामायणें प्रचलित हैं। इनमें दांडी और बिशि रामायण सबसे पुरानी मानी जाती हैं। वाल्मीकि रामायण के अलावा संस्कृत में छह और रामकथाएँ हैं। इनमें 'वशिष्ठ रामायण', 'अगस्त्य रामायण' प्राचीन हैं। विदेशों की बात की जाए तो नेपाल में तीन रामकथाएँ और इंडोनेशिया में पाँच रामकथाएँ हैं। नेपाल की रामायणें आठवीं और इंडोनेशिया की रामकथाएँ नौवीं शताब्दी की मानी जाती हैं।

प्रामाणिक रूप से स्थापित और सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली रामकथाएँ, जिनकी संख्या संस्कृत में सात हैं और हिंदी में तीन हैं। संस्कृत की प्रसिद्ध सात रामकथाएँ हैं—वाल्मीकि रामायण, योग वशिष्ठ या वशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अगस्त्य रामायण, अद्भुत रामायण और रघुवंशम्। हिंदी की प्रतिष्ठित लोकप्रिय रामकथाएँ—तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', दूसरा 'राधेश्याम रामायण' और तीसरा 'पदम चरित्र' (जैन रामायण विमलसूरी कृत) हैं। ओड़िशा में रामायण का चित्रण करने वाले 13 ग्रंथ हैं, जो ओड़िया भाषा में हैं, जिनमें प्रमुख हैं—जगमोहन रामायण, सुचित्रा रामायण, दांडी रामायण, ओड़िया रामायण, बिशि रामायण, कृष्ण रामायण, केशव रामायण आदि। इसी प्रकार, कन्नड़ भाषा में रचित कथाएँ—कुमुदेंदु रामायण, तोखे रामायण, रामचंद्र चरित्र पुराण, बतल्लेश्वर रामायण हैं। तेलुगु भाषा के चार रामायण हैं—भास्कर रामायण, रंगनाथ रामायण, रघुनाथ रामायणम् और भोल्ल रामायण। इनके अतिरिक्त, गुरु गोविंद सिंह द्वारा रचित राम अवतार या गोविंद रामायण, जो पंजाबी में लिखी गई है। साथ ही, असमिया में कथा रामायण, बाँग्ला में कृतिवास रामायण, मराठी में भावार्थ रामायण, गुजराती में रामायणपुराण, कश्मीरी भाषा में राम अवतार चरित्र, मलयालम भाषा में रामचरितम्, तमिल भाषा में रामावताराम् या कंब रामायण के अलावा बौद्ध परंपरा में अनमक जातक, दशरथ जातक और दशरथ कथानक के अलावा 10 अन्य भाषाओं में भी रामकथा लिखी गई है। रामकथा का विश्व जनमानस पर इतना प्रभाव रहा है कि कुछ विदेशी लेखकों ने भी रामकथा का लेखन किया है। इसमें सन् 1658 में श्रीलंका और दक्षिण भारत के कुछ इलाकों में छह साल तक रहे ए. रोजेरीयस द्वारा डच भाषा में लिखी किताब 'द ओपन रोरे' में राम जन्म से लेकर उनके स्वर्गारोहण तक की कहानी है और इसमें सीता की अग्नि परीक्षा का भी जिक्र है। इसके अतिरिक्त, 18वीं शताब्दी में एम. सुनेरा नाम के एक फ्रेंच यात्री ने बॉयस पोस्ट में 'ओरिएंटल' नाम की किताब लिखी थी, जिसमें एक छोटी रामकथा का वर्णन किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण का, रामकथा का विश्व मंच पर कितना प्रभाव है।

राष्ट्र की प्रगति में हिंदी भाषा की भूमिका

पिछले दिनों देखकर चौंक गया कि जिस गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था, 'अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही हमारे लड़के और लड़कियों की विदेशी माध्यम के जरिये दी जाने वाली शिक्षा बंद कर दूँ', उसी गांधी के नाम पर राजस्थान में 'महात्मा गांधी अंग्रेजी मीडियम स्कूल' खोले गए हैं। इन दिनों देशभर में अंग्रेजी माध्यम अपनाने की होड़ मची है। यहाँ तक कि कवि गुरु रवींद्रनाथ टैगोर और ईश्वरचंद

डॉ. अमरनाथ

जन्म : कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिंदी के आचार्य एवं अध्यक्ष रह चुके डॉ. अमरनाथ का जन्म गोरखपुर जनपद के रामपुर बुजुर्ग नामक गाँव में 11 सितंबर, 1953 को हुआ।

शिक्षा : उच्च शिक्षा गोरखपुर विश्वविद्यालय

प्रकाशन : 'हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास', 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली', 'आजाद भारत के असली सितारे (दो खंड)', 'नारी का मुक्ति संघर्ष', 'हिंदी जाति', 'रामपुर की रामकहानी' आदि प्रमुख कृतियाँ। कोलकाता की प्रतिष्ठित संस्था 'अपनी भाषा' के गठन और संचालन में केंद्रीय भूमिका तथा संस्था की पत्रिका 'भाषा विमर्श' का दो दशक तक संपादन। 'हिंदी बचाओ मंच' के संयोजक।

संप्रति : 'श्री चंद्रिका शर्मा फूला देवी स्मृति सेवा ट्रस्ट' के मुख्य ट्रस्टी एवं उसकी पत्रिका 'गाँव' का संपादन।

संपर्क : मोबाइल– 9433009898
ईमेल– amarnath.cu@gmail.com

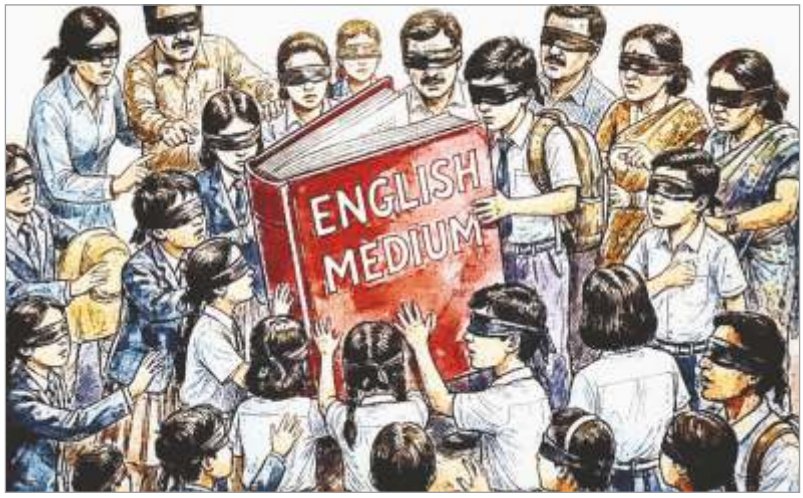

विद्यासागर की विरासत को वहन करने का दावा करने वाली पश्चिम बंगाल की सरकार ने भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोलने में कोताही नहीं बरती है। यानी, इस मुद्दे पर देश के सभी राजनीतिक दल लगभग एकमत हैं। इसके पीछे सभी का एक ही तर्क है कि अभिभावकों की यही माँग है। उनका कहना एक हद तक सही भी है। अभिभावक अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा अपने बच्चों की पढ़ाई पर खर्च करते हैं और उन्हें विश्वास है कि अंग्रेजी माध्यम से ही उनका बच्चा लायक बन सकता है। फिर वे अंग्रेजी के पीछे क्यों न भागें? प्रश्न यह है कि ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं, जिनके कारण अभिभावकों को अपनी संतानों का भविष्य सिर्फ अंग्रेजी माध्यम में ही दिखाई देता है?

इस देश में अराजपत्रित कर्मचारियों के चयन के लिए कर्मचारी चयन आयोग सबसे बड़ा संगठन है। कुछ वर्षों में धीरे-धीरे इस संगठन की परीक्षाओं से हिंदी को बाहर का रास्ता दिखाया जा चुका है। इसी तरह, राजपत्रित अधिकारियों के चयन के लिए संघ लोक सेवा आयोग तथा विभिन्न राज्यों के लोक सेवा आयोग हैं। इन आयोगों में धीरे-धीरे ऐसे परिवर्तन किए जा चुके हैं, जिससे भारतीय भाषाओं के माध्यम से परीक्षा देने वाले प्रतियोगी दौड़ से बाहर होते जा रहे हैं। संघ लोक सेवा आयोग की 2009 की परीक्षा में, जहाँ हिंदी माध्यम के 25.4 प्रतिशत परीक्षार्थी सफल हुए थे, वहीं 2019 में यह संख्या घटकर मात्र 3 प्रतिशत रह गई।

प्रश्न यह है कि देश के लोक सेवकों को कितनी अंग्रेजी चाहिए? उन्हें इस देश के लोक से संपर्क करने के लिए भारतीय भाषाएँ सीखनी जरूरी है या अंग्रेजी? उन्हें जनता के सामने अंग्रेजी झाड़कर उन पर रौब जमाना है या उन्हें समझाना-बुझाना? उनके साक्षात्कार अंग्रेजी माध्यम से क्यों लिये जाते हैं? इस देश के सबसे बड़े पद तो राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के हैं। इन पदों पर बैठे लोगों का काम तो हिंदी और गुजराती

बोलने से चल जाता है। ऐसे लोक सेवकों को लोक सेवा का अधिकार क्यों मिलना चाहिए, जो लोक की भाषा में बात कर पाने में भी अक्षम हों?

“हमारे बच्चे दूसरे की भाषा में पढ़ते हैं, फिर उसे अपनी भाषा में सोचने के लिए अनूदित करते हैं और लिखने के लिए फिर उन्हें दूसरे की भाषा में ट्रांसलेट करना पड़ता है। इस तरह, हमारे बच्चों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा दूसरे की भाषा सीखने में चला जाता है। इसीलिए मौलिक चिंतन नहीं हो पाता। मौलिक चिंतन सिर्फ अपनी भाषा में ही हो सकता है। परायी भाषा में हम सिर्फ नकलची पैदा कर सकते हैं। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा सिर्फ नकलची पैदा कर रही है। जब अंग्रेज नहीं आए थे और हम अपनी भाषा में शिक्षा ग्रहण करते थे तब हमने दुनिया को बुद्ध और महावीर दिए, वेद और उपनिषद् दिए, दुनिया का सबसे पहला गणतंत्र दिया, चरक जैसे शरीर विज्ञानी और सुश्रुत जैसे शल्य-चिकित्सक दिए, पाणिनि जैसा वैयाकरण और आर्यभट जैसे खगोलविज्ञानी दिए, पतंजलि जैसा योगाचार्य और कौटिल्य जैसा अर्थशास्त्री दिए। हमारे देश में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय थे, जहाँ दुनियाभर के विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे।”

न्याय के क्षेत्र की दशा यह है कि आज हमारे देश में सुप्रीम कोर्ट से लेकर 25 में से 21 हाई कोर्टों में हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा का प्रयोग नहीं होता है। मुवक्किल को पता ही नहीं होता कि वकील और जज उसके केस के बारे में क्या सवाल-जवाब कर रहे हैं। उसे अपने बारे में मिले फैसले को समझने के लिए भी वकील के पास जाना पड़ता है और उसके लिए भी उसे पैसे देने पड़ते हैं। प्रश्न यह है कि जब अफसर से लेकर चपरासी तक की सभी नौकरियाँ अंग्रेजी के बल पर ही मिलेंगी तो कोई अपने बच्चे को भारतीय भाषाएँ पढ़ाने की भूल कैसे कर सकता है?

वास्तव में, व्यक्ति चाहे जितनी भी भाषाएँ सीख ले, किंतु वह सोचता अपनी भाषा में ही है। हमारे बच्चे दूसरे की भाषा में पढ़ते हैं, फिर उसे अपनी भाषा में सोचने के लिए अनूदित करते हैं और लिखने के लिए फिर उन्हें दूसरे की भाषा में ट्रांसलेट करना पड़ता है। इस तरह, हमारे बच्चों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा दूसरे की भाषा सीखने में चला जाता है। इसीलिए मौलिक चिंतन नहीं हो पाता। मौलिक चिंतन सिर्फ अपनी भाषा में ही हो सकता है। परायी भाषा में हम सिर्फ नकलची पैदा कर सकते हैं। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा सिर्फ नकलची पैदा कर रही है। जब अंग्रेज नहीं आए थे और हम अपनी भाषा में शिक्षा ग्रहण करते थे तब हमने दुनिया को बुद्ध और महावीर दिए, वेद और उपनिषद् दिए, दुनिया का सबसे पहला गणतंत्र दिया, चरक जैसे शरीर विज्ञानी और सुश्रुत जैसे शल्य-चिकित्सक दिए, पाणिनि जैसा वैयाकरण और आर्यभट जैसे खगोलविज्ञानी दिए, पतंजलि जैसा योगाचार्य और कौटिल्य जैसा अर्थशास्त्री दिए। हमारे देश में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय थे, जहाँ दुनियाभर के विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे। इस देश को ‘सोने की चिड़िया’ कहा जाता था, जिसके आकर्षण में ही दुनियाभर के लुटेरे यहाँ आते रहे। प्रख्यात आलोचक रामविलास शर्मा ने कहा है कि दुनिया के किसी भी देश की संस्कृति से मुकाबला करने के लिए अपने यहाँ के सिर्फ तीन नाम ले लेना ही काफी है—तानसेन, तुलसीदास और ताजमहल।

हमारे देश में लंबे समय तक हमारे देश की किसी भाषा को यथोचित सम्मान नहीं मिला। तुर्क, पठान, मुगल आदि जितनी जातियाँ बाहर से आईं उनके शासन की भाषा फारसी थी और इस देश में भी उन्होंने फारसी को ही शासन की भाषा बनाया। पूरे छह सौ वर्ष तक भारत में शासन की भाषा फारसी थी और उसके बाद अंग्रेजी हो गई। जबसे हमारे देश में फारसी और अंग्रेजी में शासन होने लगा तब से हमारे देश के विकास की गति धीमी हो गई।

वास्तव में, किसी भी राष्ट्र की प्रगति वहाँ के मौलिक चिंतन, सृजन और वहाँ के महान अनुसंधान कार्य पर निर्भर करती है और कोई भी महान अनुसंधान कार्य अपनी भाषाओं में ही संभव होता है। मुगल काल के दौरान फारसी भले ही शासन की भाषा रही हो, किंतु देश की आम जनता पर उसका असर बहुत कम था। इसी दौर में

तुलसी का ‘मानस’ अवधी में ही रचा गया और सूर का ‘सागर’ ब्रज भाषा में, तानसेन ने अपनी तान हिंदुस्तानी में ही छेड़ी और खुसरो ने हिंदवी में। फारसी में भी रचा होगा उनलोगों ने, जिनकी मातृभाषा फारसी रही होगी, किंतु आज लोक में उनकी पहचान नगण्य है। अंग्रेजों की गुलामी के दौर में भी हमारे देश के विश्वकवि रवींद्रनाथ को ‘गीतांजलि’ बाँग्ला में लिखनी पड़ी और गांधी को ‘हिंद स्वराज’ गुजराती में। यहाँ रहने वाले अंग्रेजों को भी यहाँ के बारे में लिखने के

लिए अपनी मातृभाषा का ही सहारा लेना पड़ा, चाहे वे संस्कृत के विद्वान सर विलियम जोन्स हों या हिंदुस्तानी के जॉन गिलक्रिस्ट अथवा जार्ज ग्रियर्सन।

जब तक हमारी शिक्षा, हमारी अपनी भाषाओं के माध्यम से नहीं होंगी तब तक गाँवों की दबी हुई प्रतिभाओं को मुख्य धारा में आने का अवसर नहीं मिलेगा। आजादी के बाद इस विषय को लेकर

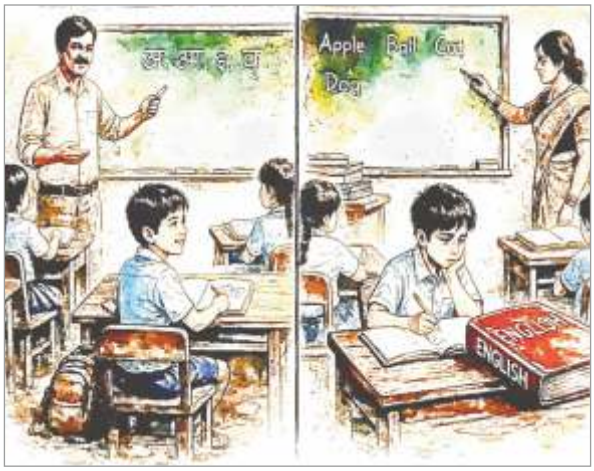

राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग आदि अनेक आयोग बने और उनके सुझाव भी आए। सबने एक स्वर से यही संस्तुति की कि बच्चों की बुनियादी शिक्षा सिर्फ मातृभाषाओं में ही दी जानी चाहिए। दुनिया के सभी विकसित देशों में वहाँ की मातृभाषाओं में ही शिक्षा दी जाती है। मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि अपनी मातृभाषा में बच्चे खेल-खेल में ही सीखते हैं और बड़ी तेजी से सीखते हैं। उनकी कल्पनाशीलता का खुलकर विकास मातृभाषाओं में ही हो सकता है।

पिछले दिनों प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द इंग्लिश मीडियम मिथ' में संक्रांत सानु ने प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर दुनिया के सबसे अमीर और सबसे गरीब, बीस-बीस देशों की सूची दी है। बीस सबसे अमीर देशों में हैं क्रमशः स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, जापान, यूनाइटेड स्टेट्स, स्वीडेन, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, नीदरलैंड, फिनलैंड, बेल्जियम, फ्रांस, यू.के., ऑस्ट्रेलिया, इटली, कनाडा, इजराइल, स्पेन, ग्रीस, पुर्तगाल और साउथ कोरिया। इन देशों की जनभाषा ही सरकारी कामकाज की भी भाषा है और शिक्षा के माध्यम की भी। इसी तरह, दुनिया के सबसे गरीब देश हैं क्रमशः काँगो, इथिओपिया, बुरुंडी, सियेरा लिओन, मलावी, नाइजर, चाड, मोजाम्बीक, नेपाल, माली, बुरकिना फासो, रवान्डा, मेडागास्कर, कंबोडिया, तंजानिया, नाइजीरिया, अंगोला, लाओस, टोगो और यूगांडा। इन बीस देशों में से सिर्फ एक देश नेपाल है, जहाँ जनभाषा, शिक्षा के माध्यम की भाषा और सरकारी कामकाज की भाषा एक ही है, नेपाली। बाकी उन्नीस देशों में राजकाज की भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा भारत की तरह जनता की भाषा से भिन्न कोई-न-कोई विदेशी भाषा है। (द्रष्टव्य, 'द इंग्लिश मीडियम मिथ', पृष्ठ-12-13) इस उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम हमारे देश के विकास में कितनी बड़ी बाधा है।

जिस जापान की तकनीक और कर्ज के बल पर हमारे यहाँ बुलेट ट्रेन की नींव पड़ी है, उस जापान की कुल आबादी सिर्फ 12 करोड़ है। वह छोटे-छोटे द्वीपों का समूह है, वहाँ का तीन-चौथाई से अधिक भाग पहाड़ है और सिर्फ 13 प्रतिशत हिस्से में ही खेती हो सकती है। फिर भी वहाँ सिर्फ भौतिकी में एक दर्जन से अधिक नोबेल पुरस्कार पाने वाले वैज्ञानिक हैं। ऐसा इसलिए है कि वहाँ 99 प्रतिशत जनता अपनी भाषा 'जापानी' में ही शिक्षा ग्रहण करती है। इसी तरह, इजराइल की कुल आबादी मात्र 83 लाख है और वहाँ 11 नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक हैं, क्योंकि वहाँ भी उनकी अपनी भाषा 'हिब्रू' में शिक्षा दी जाती है। चीन भी उसी तरह का बहुभाषी विशाल देश है, जिस तरह का भारत। किंतु उसने भी अपनी एक भाषा चीनी (मंदारिन) को प्रतिष्ठित किया और उसे वहाँ पढ़ाई का माध्यम बनाया। चीनी लिपि तो दुनिया की सबसे कठिन लिपियों में से है। वह चित्र-लिपि से विकसित हुई है। आज चीन जिस ऊँचाई पर पहुँचा है उसका सबसे प्रमुख कारण यही है कि उसने अपने देश में शिक्षा का माध्यम अपनी चीनी भाषा को बनाया। इसी तरह, अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि दुनिया के सभी विकसित देशों में वहाँ की अपनी भाषाओं—क्रमशः अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी आदि में ही शिक्षा दी जाती है। इसीलिए वहाँ मौलिक चिंतन संभव हो पाता है।

हमारे देश में अंग्रेजी सिर्फ एक भाषा नहीं है वह सत्ताधारी वर्ग के हाथ में एक ऐसा हथियार है, जिसके बल पर वे सत्ता पर काबिज हैं। ये 'काले अंग्रेज' ही आज के हमारे मालिक हैं और इनका उद्देश्य हमारे देश की प्रगति नहीं, मुनाफा कमाना और देश को लूटकर अपनी निजी संपत्ति का साम्राज्य खड़ा करना है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इन मालिकों का अपना कोई भी देश नहीं होता। जहाँ ये ज्यादा सुरक्षित महसूस करते हैं, वहीं अपना बसेरा बना लेते हैं। इनकी राष्ट्र-भक्ति सिर्फ एक दिखावा और हमें भ्रमित करने का उपकरण मात्र है। देश के अनेक भगोड़े उद्योगपति भारत देश को लूटकर विदेश में आनंदमय जीवन जी रहे हैं और भारतीय कानून व्यवस्था को ठेंगा दिखा रहे हैं। स्विस बैंकों में जमा हमारे देश की अकूत संपत्ति की सुरक्षा हर राजनीतिक दल कर रहे हैं।

गुलाम आदमी ही सोचता है कि मालिक की भाषा जानेंगे तो फायदे में रहेंगे। हमें इस सचाई को समझना होगा कि अपनी भाषा के माध्यम से ही किसी देश में मौलिक चिंतन, अनुसंधान और नए-नए आविष्कार संभव हैं। इस तथ्य को बहुत पहले हिंदी नवजागरण के अग्रदूत कहे जाने वाले भारतेंदु ने परख लिया था और कहा था, "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।"

बेटियों को मिले उचित शिक्षा और सम्मान

चाहे अंतरिक्ष में जाने वाली सुनीता विलियम्स हों या कल्पना चावला, क्रिकेट में विश्व कप हासिल करने वाली खिलाड़ी हों, या माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने वाली पहली भारतीय महिला बछेंद्री पाल, अंटार्कटिका जाने वाली सुदीप्त सेनगुप्ता या राफेल उड़ाने वाली स्क्वाड्रन लीडर शिवांगी सिंह। चाहे कॉर्पोरेट की दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित

सुमन बाजपेयी

जन्म : नई दिल्ली

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी ऑनर्स) व पत्रकारिता का अध्ययन

प्रकाशन : 30 पुस्तकें प्रकाशित, 161 (वयस्क व बाल पुस्तकें दोनों) से अधिक पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी व अंग्रेजी, दोनों भाषाओं में लेखन। उपन्यास 'द नागा स्टोरी' बेस्ट सेलर की श्रेणी में।

पुरस्कार : विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों के साथ, हिंदी अकादमी के वर्ष 2024-25 के 'बाल साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित

संप्रति : लेखिका, पत्रकार, संपादक, अनुवादक। वे विभिन्न पत्रिकाओं में संपादन कार्य कर चुकी हैं। लंबे अरसे तक चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट से जुड़ी रही हैं। साथ ही, पूर्व सहायक संपादक 'जागरण सखी', पूर्व एसोसिएट एडिटर 'मेरी संगिनी', पूर्व एसोसिएट एडिटर 'फोर्थ डी वूमेन' रही हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन कार्य कर रही हैं।

संपर्क : 9810795705

ई-मेल : sumanbajpai@gmail.com

करना हो या विज्ञान की दुनिया में नये आयाम खोलने हों, लड़कियाँ हर क्षेत्र में परचम लहरा चुकी हैं। वे जानती हैं कि अपनी मेहनत और उपलब्धियों से भारत के भविष्य को कैसे सशक्त बनाना है।

किचन से कैबिनेट और घर की चारदीवारी से खेल के मैदान तक, गुपचुप घर में सिलाई-बुनाई करतीं, पापड़-बड़ियाँ तोड़ने से बोर्डरूम तक—एक लंबा सफर तय करने वाली लड़कियों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि वह घर के साथ-साथ बाहर का काम भी उतने ही बेहतर तरीके से सँभाल सकती हैं। वे कटिबद्ध हैं कुछ कर दिखाने को। सवाल उठता है कि इन लड़कियों के लिए, जो राष्ट्र की धरोहर हैं और एक नई पीढ़ी को सींचती हैं, अपने जज्बे से, उनकी परिवार और समाज में क्या स्थिति है, उनके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए क्या किया जा रहा है। किस तरह से उनकी दशा और दिशा को निर्धारित किया जाना चाहिए, ताकि वे अपने सपनों को पूरा करने के साथ-साथ एक सुखद भविष्य की ओर दृढ़ता से कदम रख सकें।

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान की सफलता के बावजूद क्या उन्हें शिक्षा और रोजगार के अवसर मिल रहे हैं? क्या उन पर होने वाले अत्याचार और अन्याय कम या खत्म हो गए हैं? क्या उन्हें अभी भी लगातार अपने अधिकारों के लिए लड़ाई नहीं करनी पड़ती? ये ऐसे कुछ सवाल हैं, जिनके उत्तर देने के साथ-साथ उनके समाधान भी ढूँढ़ने हैं। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि बालिकाओं की दशा सुधारने और उनके जीवन को दिशा देने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं।

लैंगिक समानता की अनिवार्यता

उनकी सुरक्षा और खुशहाली का ध्यान रखने के लिए हर साल 24 जनवरी को मनाया जाने वाला राष्ट्रीय बालिका दिवस का उद्देश्य,

> **आज हर क्षेत्र में बालिकाओं के आगे बढ़ने के बावजूद वे अनेक कुरीतियों की शिकार हैं। ये कुरीतियाँ उनको आगे बढ़ने में बाधक बनती हैं। पढ़े-लिखे लोग और जागरूक समाज भी इस समस्या से अछूता नहीं है। देश में आज भी प्रतिवर्ष लाखों लड़कियों को जन्म लेने से पहले ही गर्भ में ही मार दिया जाता है। आज भी समाज के अनेक घरों में बेटा और बेटी में भेद किया जाता है। बेटियों को बेटों की तरह अच्छा खाना और अच्छी शिक्षा नहीं दी जाती है। समाज में आज भी बेटियों को बोझ समझा जाता है।**

लड़कियों को सशक्त बनाने के लिए जागरूकता बढ़ाना और एक ऐसा वातावरण तैयार करना है, जहाँ वे लिंग भेदभाव की बाधाओं के बगैर आगे बढ़ सकें। राष्ट्रीय बालिका दिवस यह सोचने का अवसर देता है कि हम अपने समाज में बालिकाओं की स्थिति को कैसे बेहतर बना सकते हैं। यह दिन हमें जागरूक करता है कि हर बेटी का हक है कि वह अपने जीवन में स्वतंत्र रूप से अपने सपनों को साकार कर सके।

राष्ट्रीय बालिका दिवस पहली बार 2008 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा लागू किया गया था और यह 22 जनवरी, 2015 को प्रधानमंत्री द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान की शुरुआत का भी प्रतीक है। राष्ट्रीय बालिका दिवस की पहल तीन मंत्रालयों द्वारा की जाती है, जिनमें महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय शामिल हैं। इसका उद्देश्य घटते बाल लिंगानुपात के मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करना है। लैंगिक समानता एक शांतिपूर्ण और प्रगतिशील समाज के लिए महत्वपूर्ण है और इसलिए इन सामाजिक बाधाओं को दूर करने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है, जो बालिकाओं के उत्थान को सीमित करती है।

इसके बावजूद, आज भी कई जगहों पर बेटियों के साथ भेदभाव, असमानता और हिंसा की घटनाएँ सामने आती हैं। आज हर क्षेत्र में बालिकाओं के आगे बढ़ने के बावजूद, वे अनेक कुरीतियों की शिकार हैं। ये कुरीतियाँ उनको आगे बढ़ने में बाधक बनती हैं। पढ़े-लिखे लोग और जागरूक समाज भी इस समस्या से अछूता नहीं है। देश में आज भी प्रतिवर्ष लाखों लड़कियों को जन्म लेने से पहले ही गर्भ में ही मार दिया जाता है। आज भी समाज के अनेक घरों में बेटा और बेटी में भेद किया जाता है। बेटियों को बेटों की तरह अच्छा खाना और अच्छी शिक्षा नहीं दी जाती है। समाज में आज भी बेटियों को बोझ समझा जाता है। इस स्थिति को बदलने के लिए जरूरी है कि समाज और सरकार मिलकर बेटियों के अधिकारों के लिए आवाज उठाएँ, उन्हें शिक्षा का अवसर दें और एक ऐसा माहौल बनाएँ, जहाँ वे सुरक्षित और सशक्त महसूस कर सकें।

निकालना होगा असुरक्षा के घेरे से बाहर

बेटियों के साथ भेदभाव और उनके साथ होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए सरकार प्रयासरत है, लेकिन यह दुखद है कि आज भी बालिकाओं की स्थिति घर और बाहर, दोनों जगह असुरक्षा के घेरे में है। वे आज भी असुरक्षित, डरी और सहमी हुई हैं। उनके साथ कुछ भी गलत होने की स्थिति में न्याय मिलना अभी भी कठिन बना हुआ है। 24 जनवरी को विभिन्न विषयों को लेकर चर्चा होती है। बालिकाओं के स्वास्थ्य, सुरक्षित एवं अनुकूल वातावरण के लिए योजनाएँ बनाई जाती हैं। कन्या भ्रूण हत्या को हतोत्साहित करने हेतु अभियान, बालिकाओं को समुचित शिक्षा के लिए बालिका छात्रवृत्ति योजनाएँ, बालिका स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न योजनाएँ और हर क्षेत्र में बालिकाओं को अधिकतम अवसर प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ चल रही हैं।

'एक बच्चा, एक शिक्षक, एक किताब
और एक कलम दुनिया बदल सकते हैं।'

ये शब्द उस बहादुर लड़की मलाला यूसुफ़जई के हैं, जिसने पाकिस्तान में तालिबान के खिलाफ आवाज उठाई, शिक्षा के अपने अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी और आगे चलकर दुनिया की सबसे कम उम्र की नोबेल पुरस्कार विजेता बनी। शिक्षा के प्रति उसके जुनून और समर्पण ने मलाला को बालिका शिक्षा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय प्रतीक बना दिया। उसकी कहानी कई लोगों के लिए प्रेरणा है, लेकिन उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि यह शिक्षा के महत्व और इस तथ्य का संदेश देती है कि आज की दुनिया में भी शिक्षा तक पहुँच एक विशेषाधिकार है, जो सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। भारत में बालिका शिक्षा एक समतामूलक राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है।

सजग हो रही हैं बालिकाएँ

सरकारी एवं गैर-सरकारी योजनाओं का असर बड़े पैमाने पर दिख रहा है, जिसके चलते बालिकाएँ सशक्त और सजग हो रही हैं, उनकी स्थिति मजबूत हो रही है। मजबूत इसलिए, क्योंकि वे निर्णय लेने लगी हैं, अपने सपनों को पंख देने लगी हैं। पहले जहाँ उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे केवल घर-गृहस्थी के कार्यों में मन लगाएँ, वहीं अब उन्हें शिक्षित और अपने पैरों पर खड़े होने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी लड़कों से बेहतर अंक लाकर उन्होंने समाज में एक नई पहचान निर्मित की है। अगर भारत की बेटियाँ नित नई ऊँचाइयों को छू रही हैं तो इसका श्रेय उनके परिवार और समाज को ही जाता है, जिसने उनके लिए सारे बंद दरवाजे खोल दिए हैं। पहले पहलवानी के क्षेत्र में कोई अभिभावक अपनी बच्ची को भेजने की बात सोच तक नहीं सकते थे। आज पहलवानी के क्षेत्र में हमारी

बच्चियों ने जो नाम कमाया है, उसे देख उन पर गर्व होता है। यही बात क्रिकेट, टेनिस और बैडमिंटन के क्षेत्र में भी कही जा सकती है।

समाज का योगदान

जो सबसे पहला कदम समाज, बालिकाओं की स्थिति सुधारने के लिए उठा सकता है, वह है लड़की और लड़के के साथ अलग-अलग ढंग से व्यवहार न करना या लड़कों को उनके शारीरिक गठन की वजह से श्रेष्ठ मानना। समाज को वह सोच अपनानी होगी, जिसमें वह इनसान को एक इनसान के तौर पर देख सके। उसकी काबिलियत से उसके गुणों और क्षमता को आँक सके। जब ऐसा संभव होगा, तभी बालिकाओं को आजादी मिलेगी और वे इस दुनिया में उस तरीके से जी सकेंगी, जैसे उन्हें जीना चाहिए। लिंग भेद के मसले को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने के बजाय समाज को उसे उसकी योग्यता के अनुसार अवसर देने होंगे।

जो महिलाएँ समाज में किसी मुकाम पर पहुँच गई हैं, जो एक बदलाव ला सकती हैं, वे यह जिम्मा अपने सिर लें। महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने के बजाय यह देखें कि एक बेहतर मानव जाति का निर्माण कैसे किया जा सकता है। जरूरी है स्त्रियों और पुरुषों के बीच के अंतर को खत्म करना। अगर उनका शोषण होता है, तो बगावत या विरोध करके नहीं; इसे केवल तभी खत्म किया जा सकता है, जब इनसान के मन में सभी को शामिल करने वाली चेतना पैदा हो। तभी बालिकाओं को समाज में उचित स्थान मिल सकेगा।

सामाजिक क्षेत्र में महिलाएँ शक्ति का स्तंभ रही हैं। डॉ. किरण बेदी, अरुणा रॉय और सुधा मूर्ति उनमें से कुछ हैं, जो देशभर में नई पहल की प्रतीक हैं और जिन्होंने समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं। हालाँकि, उनकी यात्रा आसान नहीं रही। यह चुनौतियों और सफलताओं, दोनों से भरी रही हैं। असंख्य चुनौतियों का सामना करने के बावजूद, बालिकाएँ लगातार उल्लेखनीय सफलताएँ हासिल कर रही हैं।

बालिकाओं की क्षमता का सही दोहन करने के लिए, उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और चुनौतियों का समाधान करने वाला एक पारिस्थितिकी तंत्र बनाना अनिवार्य है। यह पारिस्थितिकी तंत्र मुख्यतः ऐसे स्थानों का विकास करके बनाया जा सकता है, जहाँ उनके दृष्टिकोण का सम्मान किया जाता है और उन्हें सुना जाता है। नेटवर्किंग और मार्गदर्शन के अवसर प्रदान करके और लिंग-संवेदनशील नीतियों की वकालत करके, उन्हें एक पुख्ता जमीन प्रदान की जा सकती है।

सरकार का योगदान

सरकार लगातार विभिन्न योजना चलाकर बालिकाओं के जीवन में सुधार और उन्हें आगे बढ़ने के अवसर प्रदान कर सकती है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान एक सफल शुरुआत है। आर्थिक सहायता देने के लिए, विभिन्न योजनाएँ चलाना ही काफी नहीं है। बालिकाओं की स्थिति सुधारने के लिए सरकार को कई क्षेत्रों में काम करना चाहिए, जैसे कि शिक्षा और स्वास्थ्य के समान अवसर प्रदान करना, लैंगिक भेदभाव और हिंसा को खत्म करने के लिए सख्त कानून बनाना, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तीकरण को बढ़ावा देना, और सामाजिक जागरूकता अभियान चलाना।

बालिकाओं को अगर शिक्षित किया जाता है, तो इससे केवल उनका व्यक्तिगत रूप से सशक्तीकरण ही नहीं होता, वरन इससे उनके स्वास्थ्य और सोच पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शिक्षित बालिकाएँ अपने और अपने परिवार के कल्याण के बारे में सोच-समझकर निर्णय लेने में अधिक सक्षम होती हैं। वे स्वास्थ्य सेवा और स्वच्छता के महत्व को बेहतर ढंग से समझ पाती हैं। आवश्यक है कि ग्रामीण व शहरी, हर वर्ग की बालिका को शिक्षा का अधिकार मिले। यह समाज और सरकार मिलकर कर सकते हैं, ताकि उनकी शिक्षा एक एकीकृत शक्ति बन सके।

चुनौतियाँ अभी भी हैं

उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद, चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ, सांस्कृतिक मानदंड और अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा कई लड़कियों की शिक्षा की राह में बाधा बन रहा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, समाज और निजी क्षेत्र के सम्मिलित प्रयासों की आवश्यकता है। लड़कियों की शिक्षा में निवेश को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और सभी के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने वाले सक्षम वातावरण के निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। शत-प्रतिशत लैंगिक समानता को अपनाना ही सबसे अच्छा समाधान है।

पारंपरिक शिक्षा के साथ-साथ वित्तीय साक्षरता और उद्यमिता कौशल भी शिक्षा का हिस्सा होने चाहिए। बालिकाओं को उनके लिए उपलब्ध वित्तीय संसाधनों और विभिन्न सरकारी वित्तीय योजनाओं के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाना चाहिए, ताकि उनमें आत्मविश्वास आए और वे जीवन का आनंद ले सकें। उन्हें बचपन से ही निर्णय लेने में शामिल किया जाना चाहिए।

हमारे समाज का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम आज अपनी बच्चियों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं और उन्हें कितना महत्व देते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, कानूनी सुरक्षा और सामाजिक सशक्तीकरण के माध्यम से बालिकाओं को सशक्त बनाना न केवल एक नैतिक दायित्व है, बल्कि सामाजिक विकास के लिए एक जरूरी आवश्यकता भी है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि लड़कियों को आगे बढ़ने, सीखने के समान अवसर मिले। तभी एक संतुलित, न्यायसंगत और समृद्ध समाज बन सकेगा।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस
सतत भविष्य के लिए विज्ञान

भारत पिछले दस दशकों से अपने महान वैज्ञानिक सर सी.वी. रामन की गौरवमयी नोबेल गाथा की प्रशस्ति से भाव-विभोर होता रहा है। प्रकाश प्रकीर्णन पर सर सी.वी. रामन के अभूतपूर्व शोध के लिए ही उन्हें सन् 1930 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला, जिससे वे यह प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले भारतीय वैज्ञानिक बने थे। नोबेल पुरस्कार विजेता सर सी.वी. रामन ने 28 फरवरी, 1928 को रमन प्रभाव की घोषणा की थी। यह खोज न केवल भारतीय विज्ञान की गौरवशाली उपलब्धि थी, बल्कि इसने यह भी सिद्ध किया कि भारत वैश्विक वैज्ञानिक मंच पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ सकता है। इसी सुखद एवं प्रेरणाप्रद विज्ञान स्मृति को चिरजीवंत बनाए रखने के उद्देश्य से सन् 1986 में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एनसीएसटीसी) ने भारत सरकार से 28 फरवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के रूप में मनाए जाने का अनुरोध किया। भारत सरकार ने परिषद् के इस अमूल्य आग्रह का सम्मान रखते हुए इस दिन को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस घोषित किया तथा पहला राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 28 फरवरी, 1987 को मनाया गया था। तब से यह पूरे भारत में स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और अन्य अनुसंधान केंद्रों में मनाया जाता है।

इस दिवस का मुख्य उद्देश्य न केवल किसी महत्वपूर्ण सफलता का स्मरण करना है, बल्कि हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान के महत्व के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना, युवा मस्तिष्कों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी में करियर तलाशने के लिए प्रोत्साहित करना, वैज्ञानिक अनुसंधान और नवाचार को मान्यता देना और उसकी सराहना करना भी है। आज राष्ट्रीय विज्ञान दिवस सर सी.वी. रामन के योगदान को तो स्वीकार करता ही है, साथ ही होमी जहाँगीर भाभा, विक्रम साराभाई, ए.पी.जे अब्दुल कलाम, प्रोफेसर यू.आर. राव, जे.सी. बोस जैसे अन्य लोकप्रिय प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिकों और अनेक उन अनाम विद्वानों के योगदान को भी स्वीकार करता है, जिन्होंने भौतिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, परमाणु प्रौद्योगिकी और चिकित्सा के क्षेत्र में देश की प्रगति को सुदृढ़ आकार प्रदान किया है। विज्ञान के कुछ अन्य प्रसिद्ध भारतीय मूल के नोबेल पुरस्कार विजेताओं में हरगोबिंद खुराना (1968, चिकित्सा), सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर (1983, भौतिकी) और वेंकटरमन रामकृष्णन (2009, रसायन विज्ञान) भी शामिल हैं। भारत अभी भी अपने भारतीय विज्ञान संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान आदि जैसे संस्थानों में विश्व स्तरीय अनुसंधान निधि के

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

स्वतंत्र लेखिका हैं। 'विज्ञान प्रगति' एवं 'आविष्कार' जैसी पत्रिकाओं में उनके विज्ञान लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रकाशन : 'भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र', 'अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान : स्वर्णिम पचास वर्ष', 'अंटार्कटिका : भारत की हिमानी महाद्वीप के लिए यात्रा' आदि पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : मध्य प्रदेश युवा वैज्ञानिक पुरस्कार (1999), राजीव गाँधी ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार-2012 (2014 में प्रदत्त), वीरांगना सावित्रीबाई फुले राष्ट्रीय फेलोशिप सम्मान (2016), नारी गौरव सम्मान (2016)।

संपर्क : मोबाइल– 8975245042
ईमेल– shubhrataravi@gmail.com

माध्यम से विज्ञान और प्रौद्योगिकी में और अधिक नोबेल पुरस्कारों के लिए प्रयासरत है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस में हम सिर्फ अतीत की उपलब्धियों का उत्सव नहीं मनाते, अपितु एक बेहतर दुनिया को आकार देने वाले विज्ञान की प्रशस्ति भी करते हैं। आज के तेजी से बदलते तकनीकी परिदृश्य में यह दिन एक अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है कि वैज्ञानिक प्रगति समावेशी, नैतिक और मानवता की भलाई के उद्देश्य से होनी चाहिए।

"पिछले 10 वर्षों में ही लगभग 300 कंपनियों ने भारत में अनुसंधान एवं विकास केंद्र स्थापित किए हैं, जो कई अग्रणी उद्यमों द्वारा नवाचारों के बहुविध स्रोतों के माध्यम से एक नवाचार मंच बनाने की व्यापक योजना का हिस्सा है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो वर्ष 2026 में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि इस साल इसका विषय 'सतत भविष्य के लिए विज्ञान : भारतीय युवाओं को सशक्त बनाना' निर्धारित हुआ है।"

भारत सहित समस्त विश्व आज जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय क्षरण, ऊर्जा संसाधनों की कमी, स्वास्थ्य संकट और खाद्य सुरक्षा जैसे अनेक जटिल संकटों से जूझ रहा है। इन वैश्विक चुनौतियों से निपटने में विज्ञान-आधारित नवीकरणीय ऊर्जा तकनीकें, सतत कृषि पद्धतियाँ, हरित अवसंरचना तथा जलवायु मॉडलिंग और शमन रणनीतियाँ ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ऐसे में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में निरंतर अनुसंधान, नवाचार और निवेश की आवश्यकता की याद दिलाता है। इस दिन को मनाकर भारत अपनी सामाजिक प्रगति को सशक्त बनाने की दिशा में अग्रसर है। बरसों पहले कार्ल मार्क्स ने भले ही यह तर्क दिया हो कि सामाजिक संबंधों, मानसिक अवधारणाओं और दृष्टिकोणों के विकास के लिए तकनीक एक आवश्यक, लेकिन पर्याप्त शर्त नहीं है। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विज्ञान और तकनीक के बिना आधुनिक जीवन संभव नहीं होता। ये दोनों ही स्थानीय सीमाओं से परे पहुँचते हैं और सभी के जीवन को प्रभावित करते हैं। तकनीकी परिवर्तन और निरंतरता के उपयोग के बल पर ही यह समझा जा सका कि मानवता कैसे विकसित हुई है। अग्नि और पहिये के विकास ने कैसे मानव के दैनिक जीवन को बदल दिया। हाँ, यह सच है कि विज्ञान और तकनीकी विकास का स्तर मानव सभ्यता के शिकार और संग्रहण के प्रस्तरकाल से लेकर कृषि और औद्योगिक समाज के विकास तक के विभिन्न ऐतिहासिक युगों में भिन्न-भिन्न रहा है। फिर भी ये समस्त तकनीकी कारक कहीं-न-कहीं उन परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें मनुष्य ने अपने जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन किए हैं। निस्संदेह, सभ्यता का एक परिणाम आधुनिक विज्ञान और तकनीक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के वर्तमान युग में अमेरिका और यूरोपीय संघ जैसे उन्नत पश्चिमी देश दुनिया में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी बने हुए हैं। वहीं भारत जैसे ज्ञान-विज्ञान परंपरा में पुरातनकाल से प्रमुख स्थान रखने वाले देश का सद्योदय भी विश्व विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भूगोल को पुनः बदल रहा है।

वर्तमान में भारत इसरो द्वारा निरंतर मंगलयान, चंद्रयान, सूर्ययान, पहले भारतीय अंतरिक्षयात्री शुभांशु शुक्ला की विजय सहित असंख्य असाधारण उपग्रहीय उपलब्धियों से परिपूर्ण अंतरिक्ष अन्वेषण एवं कोरोना महामारी के संकट में कोरोना बचाव टीकों के निर्माण की अद्वितीय सफलता के साथ-साथ अनेक चिकित्सा वैज्ञानिक संकल्पपूर्तियों और नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति कर रहा है। भारत अपने प्रतिभाशाली युवाओं के संदर्भ में तेजी से एक वैश्विक अनुसंधान एवं विकास केंद्र बनता जा रहा है, जिनका उपयोग दुनियाभर की कंपनियों को अनुसंधान एवं विकास सेवाएँ प्रदान करने के लिए किया जाता है। पिछले 10 वर्षों में ही लगभग 300 कंपनियों ने भारत में अनुसंधान एवं विकास केंद्र स्थापित किए हैं, जो कई अग्रणी उद्यमों द्वारा नवाचारों के बहुविध स्रोतों के माध्यम से एक नवाचार मंच बनाने की व्यापक योजना का हिस्सा है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो वर्ष 2026 में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि इस साल इसका विषय 'सतत भविष्य के लिए विज्ञान : भारतीय युवाओं को सशक्त बनाना' निर्धारित हुआ है। यह विषय दो मूलभूत लक्ष्यों को एक सूत्र में पिरोता है, पहला सतत विकास और युवा सशक्तीकरण और दूसरा विज्ञान को वर्तमान चुनौतियों और भविष्य के समाधान के बीच की कड़ी के रूप में प्रस्तुत करता है।

भारत में 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या 25 वर्ष से कम आयु वाले नागरिकों की है। यदि इस युवा शक्ति को उचित शिक्षा, अवसर और मार्गदर्शन मिले, तो यह वैश्विक नवाचार का नेतृत्व कर सकती है। इस वर्ष की राष्ट्रीय विज्ञान दिवस थीम युवाओं को यह समझाने का प्रयास है कि विज्ञान केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक कर्तव्यनिष्ठ और उद्देश्यपूर्ण करियर भी बनाने की क्षमता रखता है। वे आज के कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, क्वांटम

कंप्यूटिंग और पर्यावरण विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भारत को अपनी चरक, सुश्रुत, आर्यभट, आदि युगीन प्राचीन वैज्ञानिक विरासत पुनः दिला सकते हैं। एक बार वे फिर सिद्ध कर सकते हैं कि विज्ञान केवल प्रयोगशाला तक सीमित नहीं है, यह एक जीवन दृष्टिकोण है। युवाओं में तर्कशीलता और विवेक, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति, साक्ष्य आधारित निर्णय तथा रचनात्मकता और नवाचार जैसे गुण उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए अनिवार्य हैं। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का आयोजन जहाँ देश के युवाओं को सशक्त बनाता है, वहीं इससे सतत विकास को गति मिलती है एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण जन-जन तक पहुँचता है। जैसे-जैसे भारत विकसित राष्ट्र बनने की ओर बढ़ रहा है, विज्ञान और युवा उसकी सबसे बड़ी पूँजी हैं। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था कि विज्ञान मानवता को दिया गया एक सुंदर उपहार है, हमें इसे विकृत नहीं करना चाहिए। इस वर्ष का राष्ट्रीय विज्ञान दिवस युवाओं को यही समझाने का प्रयत्न कर रहा है।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाने का मुख्य उद्देश्य छात्रों के बीच उभरते वैज्ञानिकों की पहचान करना और उन्हें विकसित होने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करना भी है। अतः इस दिन देशभर में विद्यालयों और महाविद्यालयों में विज्ञान प्रदर्शनियों, वाद-विवाद और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताओं, वैज्ञानिक व्याख्यान तथा प्रयोगात्मक कार्यशालाओं के ये आयोजन विज्ञान को रोचक, सुलभ और प्रेरणादायक बनाते हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र आदि देश के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थान इस दिन प्रयोगशालाओं के भ्रमण, सार्वजनिक व्याख्यान और कई ऑनलाइन विज्ञान उत्सव आयोजित करते हैं, जिससे युवा विज्ञान की वास्तविक दुनिया से जुड़ाव महसूस करते हैं। आज लगातार बढ़ रहे सोशल मीडिया के युग में भारत में विशेष रूप से वैज्ञानिक साक्षरता अति आवश्यक हो गई है। समाज में चहुँओर फैले अंधविश्वासों के खंडन, तर्कशीलता के प्रचार और उचित निर्णय लेने की क्षमता में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के आयोजनों से काफी बल मिलता है।

विज्ञान के बारे में अधिक-से-अधिक लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एनसीएसटीसी) ने राष्ट्रीय विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कारों की शुरुआत की है, जिसमें देश के विज्ञान संचारकों को पुरस्कृत किया जाता है। भारत सरकार ने भी युवाओं को विज्ञान से जोड़ने हेतु अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं। इनमें प्रमुख रूप से इंसपायर छात्रवृत्तियाँ और मार्गदर्शन, अटल नवाचार मिशन के अंतर्गत टिंकरिंग लैब्स और स्टार्टअप्स, विज्ञान ज्योतिः स्टेम अर्थात् विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित में बालिकाओं को प्रोत्साहन तथा उच्चस्तरीय अनुसंधान को समर्थन देने वाले राष्ट्रीय अनुसंधान प्रतिष्ठानों की स्थापना आदि शामिल हैं। देश की नई शिक्षा नीति 2020 भी विज्ञान शिक्षा को अनुभवात्मक, अंतर्विषयक, कोडिंग और गणनात्मक सोच आधारित एवं अनुसंधानोन्मुख बनाने पर जोर देती है, जो राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 2026 की थीम के पूर्णतः अनुरूप है। भारत की ये सभी पहलें विज्ञान के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने का सशक्त साधन साबित हो रही हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज का भारतीय युवा सामाजिक और पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति सजग है।

विज्ञान युवाओं को स्वच्छ ऊर्जा समाधान विकसित करने, कम लागत वाले चिकित्सा उपकरण बनाने, जलवायु अनुकूल फसलें तैयार करने और स्मार्ट शहर और हरित परिवहन की रचना जैसे विविध आयामी नवाचारों को गढ़ने में सक्षम बना रहा है। यह विज्ञान उत्सव भारत की दीर्घकालिक अमृत काल रणनीति (2022-2047) का भी एक हिस्सा है, जिसका उद्देश्य भारत को एक वैश्विक आर्थिक महाशक्ति के रूप में स्थापित करना और नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार करना है। यह उस अभियान का एक हिस्सा है, जिसका उद्देश्य 2047 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र में बदलना है। किसी देश का विकासशील से विकसित देश में परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है, जिसके लिए समाज में पहले से स्थापित परंपराओं, सोच और मान्यताओं को वैज्ञानिक साँचे में परिष्कृत कर पाना कोई सरल काम नहीं है। इस पर भारत जैसे बहुविधायी, बहुभाषायी और बहुसांस्कृतिक देश को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए प्रेरणा न केवल वैज्ञानिकों से, बल्कि समाज के अन्य क्षेत्रों से भी आनी चाहिए। एक ऐसे विश्व में, जहाँ वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धात्मकता का बोलबाला है, भारत प्रगति के लिए ऐसे क्षेत्रों को खोजना होगा, जिनमें वह प्रशिक्षित युवाशक्ति, अनुकूल प्राकृतिक संसाधनों या वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमताओं के बल पर अपने प्रतिस्पर्धियों से काफी आगे जा सके। इसमें विज्ञान और वैज्ञानिक इन विकल्पों को निर्धारित करने और विकास रणनीतियों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

‘उदन्तमार्त्तंड’ से शुरू हुआ भारतीय पत्रकारिता का पहला कदम

हिंदी पत्रकारिता के आज करीब दो सौ साल पूरे होने को है। पत्रकारिता की यह यात्रा पहली बार 30 मई, 1826 को उदन्तमार्त्तंड, यानी समाचार सूर्य से शुरू होती है। यह सूर्य उस कलकत्ता में उगा, जो बाँग्लाभाषियों का केंद्र था। कुछ कदम चलने के बाद आर्थिक संकट और सरकारी सहायता के अभाव में यह अखबार बंद हो गया। लेकिन अपनी अल्प अवधि में जो छोड़ गया उसके पदचिह्नों पर आगे की हिंदी पत्रकारिता बढ़ी। उदन्तमार्त्तंड के प्रकाशन के समय देश में ब्रिटिश हुकूमत थी। उस समय न तो देश में इतनी साक्षरता थी कि हिंदी समाज के लोग इसे खरीदकर पढ़ सकें और न ही सरकारी सहायता मिलने का कोई प्रावधान बन सका। साप्ताहिक अखबार की कीमत शुरू में दो आना रखी गई। बाद में 16वें अंक से इसका मूल्य आठ आना लिखा हुआ मिलता है। आठ पृष्ठ का यह अखबार आकार में 12x8 इंच था। एक साल सात माह तक चले इस अखबार के कुल 79 अंक प्रकाशित हुए।

अखबार को प्रकाशित करने का सपना संपादक पंडित जुगल किशोर ने देखा। वे कई भाषाओं के जानकार थे। शुरू में उन्होंने कलकत्ता की दीवानी कचहरी में प्रोसीडिंग रीडर का काम किया, बाद में पेशे से वकील बने। अपनी भाषा में समाचार पाने का सुख स्थानीय लोगों को मिले, इसे ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह अखबार निकाला। प्रकाशन के लिए 09 फरवरी, 1826 के एक वक्तव्य के अनुसार जुगल किशोर शुक्ल ने मुख्य सचिव सी. लुशिंगटन को एक आवेदन दिया कि वह देवनागरी लिपि में हिंदी का एक साप्ताहिक अखबार शुरू करना चाहते हैं। प्रेस अध्यादेश 1823 के तहत सरकारी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए मजिस्ट्रेट को अपेक्षित हलफनामा भेजा। इस हलफनामे को स्वयं शुक्ल और मन्नू ठाकुर ने सत्यापित किया। इस क्रम में 16 फरवरी, 1826 को इसका लाइसेंस जारी हुआ और फिर 30 मई, 1826 को इसका पहला अंक बाजार में सामने आया। यह दिन प्रिंट प्रकाशनों के लिए ऐतिहासिक दिन बन गया। संपादक पंडित शुक्ल ने पत्र की प्रारंभिक विज्ञप्ति में लिखा, “यह ‘उदन्तमार्त्तंड’ अब पहले-पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु, जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी-ओ-पारसी-ओ बंगाल में जो समाचार का कागज छपता है उनका सुख उन बोलियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है। और सब लोग पराए सुख से सुखी होते हैं। जैसे पराए धन

डॉ. अनुपम कुमार

दिल्ली विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कार्य। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के रामानुजन कॉलेज, हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर। इसके अतिरिक्त, दस वर्ष तक ‘दैनिक हिंदुस्तान’ और ‘नई दुनिया’ में बतौर पत्रकार कार्यरत रहे।

संपर्क : मोबाइल– 9868481186

ईमेल– anupamhh@gmail.com

धनी होना और अपनी रहते परायी आँख देखना, वैसे ही जिस गुण में जिसकी पैठ न हो उसको उसके रस का मिलना कठिन ही है और हिंदुस्तानियों में बहुतेरे ऐसे हैं। इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देख, आप पढ़ ओ समझ लेयं, ओ पराई अपेक्षा न करें, ओ अपने

“कलकत्ता में उस दौर में एक के बाद एक अंग्रेजी, फारसी और बाँग्ला में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। सन् 1818 में ‘समाचार दर्पण’ बाँग्ला में प्रकाशित पहला समाचार पत्र था। इसे श्रीरामपुर के पादरियों ने शुरू किया था। इससे पहले, 1816 में गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने ‘बंगाल गजट’ का प्रवर्तन किया था। इसके बाद, 1822 में उर्दू में जाम-ए-जहांनुमा प्रकाशित हुआ। हिंदी पत्रिका उदन्तमार्त्तंड हर हफ्ते मंगलवार को पाठकों के पास पहुँचता था। कलकत्ता के कोलू टोला मोहल्ला के 37 नंबर आमड़तल्ला गली से प्रकाशित इस अखबार का आखिरी अंक 4 दिसंबर, 1827 को निकला। इस अखबार में प्रकाशित खबरों तथा अन्य सामग्री को देखने से यह भलीभाँति प्रतीत होता है कि उन दिनों हिंदी पत्रकारिता की नींव संघर्ष, त्याग, बलिदान और निर्भीकता पर टिकी हुई थी।”

भाषे की उपज न छोड़ें...।” पत्रिका के प्रकाशन के पीछे छिपे उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने जो भाव इस पत्र के प्रथम अंक के संपादकीय लेख में प्रकट किए थे, इससे यह मालूम होता है कि उनके मन में तत्कालीन प्रशासन और अंग्रेजी भाषा के प्रति असंतोष का भाव था। इस मर्म को आगे चलकर आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता भारतेंदु हरिश्चंद्र ने, ‘निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल’ कहकर पहचाना। अपनी भाषा चाहे वह हिंदी हो या कोई और, उसकी उन्नति करके ही समाज को तरक्की की राह पर ले जाया जा सकता है, जिसे आज फिर से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल मर्म बनाया गया है।

कलकत्ता में उस दौर में एक के बाद एक अंग्रेजी, फारसी और बाँग्ला में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। सन् 1818 में ‘समाचार दर्पण’ बाँग्ला में प्रकाशित पहला समाचार पत्र था। इसे श्रीरामपुर के पादरियों ने शुरू किया था। इससे पहले, 1816 में गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने ‘बंगाल गजट’ का प्रवर्तन किया था। इसके बाद, 1822 में उर्दू में जाम-ए-जहांनुमा प्रकाशित हुआ। हिंदी पत्रिका उदन्तमार्त्तंड हर हफ्ते मंगलवार को पाठकों के पास पहुँचता था। कलकत्ता के कोलू टोला मोहल्ला के 37 नंबर आमड़तल्ला गली से प्रकाशित इस अखबार का आखिरी अंक 4 दिसंबर, 1827 को निकला। इस अखबार में प्रकाशित खबरों तथा अन्य सामग्री को देखने से यह भलीभाँति प्रतीत होता है कि उन दिनों हिंदी पत्रकारिता की नींव संघर्ष, त्याग, बलिदान और निर्भीकता पर टिकी हुई थी। इस पत्रिका में देशी-विदेशी तथा स्थानीय खबरों के अलावा हास्य-व्यंग्य आदि टिप्पणियाँ और लेख भी प्रकाशित होते थे। साथ ही, उसमें सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति, पाक्षिक इश्तहार, जहाजों के आवागमन का समय और कलकत्ता के बाजार भाव प्रमुखता से होते थे। कभी-कभी इसमें जोधपुर, भरतपुर और महाराजा रणजीत सिंह की खबरें भी प्रकाशित होती थीं। इसे शुरू में कई तरह की परेशानी का सामना करना पड़ा। मसलन, ग्राहकों की संख्या बहुत कम थी। कोशिश करने के बाद भी जब नहीं बढ़ी तो अपना क्षोभ कुछ इस प्रकार प्रकट किया, “शूद्र चाकरी आदि नीच काम करते हैं, उन्हें पढ़ाई लिखाई से मतलब नहीं। कायस्थ फारसी-उर्दू पढ़ा करते हैं और वैश्य अक्षर समूह सीखकर बही-खाता करते हैं, खत्री बजाजी आदि करते हैं, पढ़ते-लिखते नहीं, और ब्राह्मणों ने तो कलियुगी ब्राह्मण बनकर पठन-पाठन को तिलांजलि दे रखी है, फिर हिंदी का समाचार पत्र कौन पढ़े और खरीदे?” सरकार तथा जनता से मदद की अपेक्षा थी। लेकिन इस उम्मीद पर जल्द ही पानी फिर गया। अखबार ज्यादा चल नहीं पाया। हालाँकि, अखबार निकालने की कसक आगे भी बनी रही, जिसके फलस्वरूप 1850 में ‘साम्यदंत मार्त्तंड’ नाम से एक और पत्रिका निकाली, पर ज्यादा सफलता नहीं मिली। हिंदी और भाषायी पत्रकारिता के समक्ष जो समस्याएँ और चुनौतियाँ उस समय थीं वह कमोबेश आज भी कायम हैं।

हालाँकि, संपादक शुक्ल जी ने जो नींव डाली, वह आगे लिए प्रस्थान बिंदु बन गया। पहली बात यह कि उन्होंने भविष्य में प्रकाशित हिंदी समाचार पत्रों के लिए उपयुक्त भाषा शैली निर्धारित कर दी थी। उस समय हिंदी में दो तरह की लेखन शैलियाँ प्रचलित थीं। ब्रजभाषा की शैली, जिसका परिचय उनकी पत्रिका से मिलता है। दूसरा, कलकत्ता से जो भी हिंदी पत्र निकले उन पर स्थानीय भाषा और संस्कृति का प्रभाव स्वाभाविक है। पंडित शुक्ल अपने पत्र में भारत की तत्कालीन राजनीति, व्यापार, ज्ञान-विज्ञान और सारे देश के प्रमुख समाचार देते थे। उनकी व्याख्या भी स्थानीय व्यापारी वर्ग के लिए करते थे। ऐसा इसलिए, क्योंकि ज्यादातर व्यापारी वर्ग की भाषा हिंदी ही थी। उदन्तमार्त्तंड में खड़ी बोली की शैली में महत्वपूर्ण व्यक्तियों संबंधी समाचार भी छपा करते थे। इसके अलावा, सब तरह के समाचार छपते थे, जैसे अंग्रेजी विलायत की बड़ी सभा, रंगून की खबर, जहाज की चोरी, गवर्नर जनरल बहादुर की खबर आदि। उपर्युक्त उदाहरणों से उस समय की भाषा एवं लेखन-शैली का भी परिचय मिलता है। ‘ऐसा’, ‘तुर्त,’ ‘मनोर्थ’, ‘सुन्न’ जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता था। उसमें ब्रजभाषा की छाप झलकती है, बंगाल का प्रभाव परिलक्षित होता है। जैसे—‘इसका मोल सब सुद्धा’ आदि। तब अरबी, फारसी के शब्द कम मिलते हैं। विराम चिह्नों का भी प्रयोग नहीं मिलता। उसमें वाक्य बड़े-बड़े हैं। ‘जिससे’ के स्थान पर

जिस्से, 'जिनने' के स्थान पर जिन्ने जैसे शब्दों का उपयोग है। एक और बात यह कि संपादक की लेखनी तथ्यों को पूर्ण और आकर्षक बनाकर अच्छे स्वरूप में प्रकट करने में समर्थ थी।

उदन्तमार्त्तंड में कहीं-कहीं गहरा व्यंग्य भी मिलता है। इसकी एक बानगी देख सकते हैं, "एक यशी वकील वकालत का काम करते-करते बुड्ढा होकर अपने दामाद को वह सौंप के आप सुचित हुआ। दामाद कई दिन बाद वह काम करके एक दिन आया, औ प्रसन्न होकर बोला, हे महाराज! आपने जो फलाने का पुराना ओ संगीन मोकद्दमा हमें सौंपा था सो आज फैसला हुआ। यह सुनकर वकील पछता करके बोला कि तुमने सत्यानाश किया। उस मोकद्दमें से हमारे बाप बढ़े थे तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमें हाथ उठा के दे गए ओ हमने भी उसको बना रखा, ओ अबतक भली-भांति अपना दिन काटा, ओ वही मोकद्दमा तुमको सौंप करके समझा था कि तुम भी अपने बेटे पोते परोतों तक पलोगे पर तुम थोड़े से दिनों में उसका खो बैठे।"

अखबार के बंद होने का एक तात्कालिक कारक बना मानहानि का मुकदमा। बाँग्ला पत्र 'समाचार चन्द्रिका' में उत्तर भारतीय और मारवाड़ी व्यापारियों के खिलाफ एक चिट्ठी छपी थी। इसके जवाब में उदन्तमार्त्तंड ने उसी शैली में दो-तीन चिट्ठियाँ छापी तथा एक टिप्पणी भी लिखी, जिसके उत्तर में 4 अप्रैल, 1827 को 'समाचार पत्रिका' के संपादक भवानी चरण बनर्जी ने उनके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपमानजनक सामग्री छापने के आरोप में कार्यवाही करने की सूचना दी। दुख की बात यह कि जिन व्यापारियों के हित में श्री शुक्ल ने कानूनी कार्यवाही आमंत्रित किया, उन्होंने उनका समर्थन तो दूर, उदन्तमार्त्तंड का ग्राहक चंदा भी नहीं दिया। इस तात्कालिक परेशानी से घिरे संपादक शुक्ल को अखबार बंद करना पड़ा।

आरंभ में इस पत्र की केवल 500 प्रतियाँ ही मुद्रित हुईं और इसके ग्राहक मुख्य रूप से वहाँ के व्यापारी और हिंदी जानने वाला अभिजात वर्ग था, जिनकी संख्या बहुत कम थी। इस पत्रिका के उद्देश्य के बारे में बाँग्ला साप्ताहिक 'समाचार चन्द्रिका' ने लिखा है, "नासमझी और रुढ़ियों के अँधेरे में जकड़े हुए हिंदुस्तानी लोगों की प्रतिभाओं पर प्रकाश डालने और उदन्तमार्त्तंड द्वारा ज्ञान के प्रकाशनार्थ इस पत्र का श्रीगणेश हुआ था। और हिंदुस्तान और नेपाल आदि देशों के लोगों, महाजनों तथा इग्लैंड के साहबों के बीच वितरित हुआ और हो रहा है।" (हिंदी पत्र : रूपक बनाम मिथक, डॉ. अनुशब्द, पृष्ठ 21)

अखबार के जल्द बंद होने की पूर्व सूचना देते हुए संपादक ने लिखा है, "आज दिवस लौ उग चुक्यौ मार्तण्ड उदन्त, अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।" कलकत्ता से शुरू हुई यह यात्रा आगे चलकर काशी पहुँची। हिंदी प्रदेश में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की पहल पर जनवरी, 1845 में साप्ताहिक 'बनारस' अखबार निकाला गया। कलकत्ता से सन् 1854 में बाबू श्यामसुन्दर दास के नेतृत्व में पहला हिंदी बाँग्ला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' निकला। एक बार जो सिलसिला चल पड़ा तो वह आगे भी जारी रहा। सन् 1873 में 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' और इससे पूर्व 'कविवचन सुधा' भी प्रकाशित हुई। 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' इसलिए याद की जाती है, क्योंकि उसमें संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उद्घोषणा की—'हिंदी नयी चाल में ढली।' दरअसल, यह भाषा के नये तेवर के आगमन का संकेत था, जहाँ पत्रिका खड़ी बोली में आकार ले रही थी। पत्रकारिता के इस पहले चरण पर नवजागरण, खासकर बंगाल के नवजागरण की छाप है। उस दौर में समाज सुधार के कार्यक्रम, खासकर बंगाल में, विभिन्न समाजसेवियों और सामाजिक संस्थाओं द्वारा जारी था। उनमें अपनी भाषा को लेकर जागृति का बोध भी उठ खड़ा हुआ था। इसके बाद हिंदी गद्य के निर्माण का कार्य भी तेजी से हुआ।

आज अतीत के इन पन्नों को देखें तो हिंदी पत्रकारिता का जो बीज दो सौ साल पहले बोया गया वह भले ही पूरी तरह अंकुरित नहीं हो पाया, लेकिन उसका महत्व आज भी है। कवि रवींद्रनाथ ने अपनी एक कविता में विश्वासपूर्वक गाया है कि, "जीवन में जो पूजाएँ पूरी नहीं हो सकी हैं, मैं जानता हूँ कि वे भी खो नहीं गई हैं। जो फूल खिलने से पहले ही पृथ्वी पर झड़ गया है, जो नदी मरुभूमि के मार्ग में ही अपनी धारा खो बैठी है, मैं ठीक जानता हूँ कि वे भी खो नहीं गई हैं, वे सब तुम्हारी वाणी के तार में बज रहे हैं...।" उदन्तमार्त्तंड की यात्रा कुछ ऐसी ही रही। कम अवधि में जो अलख जगाया, वह परवर्ती पत्रकारिता के लिए किसी प्रेरणास्रोत की तरह है। यह व्यक्ति ही नहीं, एक युग का स्वप्न था। पत्रकारिता के माध्यम से चेतना-निर्माण करने वाला एक प्रकाश-स्तंभ था। यह उस संस्कृति की दास्तां है, जो आगे चलकर हिंदी समाज में पल्लवित पुष्पित हुई।

आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
प्रतिस्पर्धा	**प्रतिस्पर्धा**	**मुकाबला**	**मुकाबला**	**मान मान**	**चटाभेटी**	**प्रतिस्पर्धा मुकाबला**	**स्पर्धा**	**प्रतिस्पर्धा**	**होड़, प्रतिस्पर्धा**	**प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता/ प्रतिजोगिता**
प्रतीक	प्रतीकम्	परतीक, प्रतीक	अलामत	तश्बीह	प्रतीकु, अलामत	प्रतीक	प्रतीक	प्रतीक, चिह्न	प्रतीक, चिह्न	प्रतीक
प्रतीक्षा	प्रतीक्षा	उडीक	इंतिजार	इंतिजार	इंतिजारू	प्रतीक्षा	तिश्टत	प्रतीक्षा, वाट जोवी ते	ढुकाइ, कुराइ, प्रतीक्षा	प्रतीक्षा, अपेक्षा/ अपेक्खा
प्रतीक्षालय	प्रतीक्षालयः	वेटिंगरूम्, उडीकघर	वेटिंगरूम, इंतिजार घर	वेंटिग रूम, इन्तिजारुच	तरिसण जी जाइ,	प्रतीक्षालय	प्रतिक्षालय	प्रतीक्षालय	प्रतीक्षालय	प्रतीक्षालय/ प्रतीक्खालय
प्रत्यक्ष	प्रत्यक्षम्, अपरोक्षम्	प्रतक्ख	वाजेह	द्रेंठमान	जाहिर, प्रतख	प्रत्यक्ष,	प्रत्यक्ष,	प्रत्यक्ष स्पष्ट, नजर सामेनुं	स्पष्ट, प्रत्यक्ष, खुलस्त	प्रत्यक्ष/ प्रत्तयक्ख
प्रत्यय	प्रत्ययः	विशवास	यकीन	पछ	विश्वासु	विश्वास	विश्वास	विश्वास, भरोसा	विश्वास, पत्यार	बिश्वास/ बिश्शास
प्रत्याशी	अभ्यर्थी	उमीदवार	उम्मीदवार	व्यमेदवार	उम्मीदवारू	उम्मेदवार	उमेदवार	उमेदवार	उम्मेदवार, प्रत्याशी	प्रत्याशी
प्रत्येक	प्रत्येकम्	हरेक	हरएक	प्रथकाँह	हरहिकु, हरिको	प्रत्येक	प्रत्येक	प्रत्येक, दरेक	हरेक, प्रत्येक	प्रत्येक
प्रथम	प्रथम	अव्वल, प्रथम	अव्वल	ग्वडन्युक	पहियाँ	प्रथम	पयलो	प्रथम, पहेलुं	पहिलो, प्रथम	प्रथम
प्रथा	प्रथा, रीतिः	प्रथा, रीत	रिवाज, रस्म	रयवाज	प्रथा, रीति रवाजु	प्रथा, रीत	रीत, पद्धत	प्रथा, रीत परिपाटी	प्रथा, परिपाटी चलन	प्रथा रीति
प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा	परदक्खणा	तवाफ्	प्रदिख्यन	प्ररिक्रमा	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा	परिक्रमा, प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा परिक्रमा
प्रदर्शनी	प्रदर्शिनी	नुमाइश	नुमाइश	नुमॉयिश	नुमाउ, नुमाइश	प्रदर्शन	प्रदर्शनी	प्रदर्शनी, प्रदर्शन देखावो	प्रदर्शनी	प्रदर्शनी
प्रबंध	व्यवस्था-पनम्, प्रबन्धः	परबंध, प्रबंध	इंतिजाम	इंतिजाम	प्रबंधु, बंदोबस्तु	व्यवस्था	व्यवस्था	प्रबंध, बंदोबस्त	प्रबन्धु, इन्तिजाम	व्यबस्था

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा	तान्नबा, मुक्खाइनबा, लम्बा तौनबा	प्रतिस्पर्धा, प्रतिजोगिता	पोटी	पोट्टि	मत्सरम्	स्पर्धे	होड़, मकाबला	हेपेराव, मुकाबेला	प्रतिस्पर्धा	बादायला-यनाय
प्रतीक, चिन, निदर्शन	खुदम ओइना खड्नबा, करिगुम्बा अमगी महुत्-शिन्बा खुदम	प्रतीक, चिन्ह	प्रतीक	अडैयाळम्, संकेतक्कुरि	प्रतीकम्, चिह्नम्	प्रतीक, चिह्ने	प्रतीक	चिनहा	प्रतीक, चिह्न	सिन, नेरसोन
प्रतीक्षा, अपेक्षा	डाइबा	प्रतीक्षा, अपेक्षा	निरीक्षण	ऍदिर् पार्त्तल, कात्तुक्कोण्डु इरुत्तल्	प्रतीक्ष, कात्तिरिप्पु	निरीक्षे	इंतजार, बलगना	ताँगी	प्रतीक्ष	नेनाय
प्रतीक्षालय अपेक्षाकरा कक्ष	डाइफम, मफम	प्रतीक्षालय	निरीक्ष-णालयमु	कात्तिरु-क्कुम् इडम्	प्रतीक्षालयम्	निरीक्षालय	बलगन घर बेटिंग रूम	ताँगी अड़ाक्, प्रतीक्षालय	प्रतीक्षालय	नेग्रा थावनि नेग्राखुलि, नेग्रासालि
प्रत्यक्ष चकुरे-देखा इंद्रिय द्वारा उपलब्ध	मीत्माड्दा, इमाड्दा उबा	प्रत्यख्य, सलख, स्पष्ट, सरल, अकपट	प्रत्यक्ष-मुगा उन्न	नेरुक्कु-नेराग, नन्गु पुलप्पडुगिर्	प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष-प्पेट्ट	प्रत्यक्ष	परतक्ख	पष्ट मेलभामक	प्रत्यक्ष	रोखा नुनाय, थोंजों
प्रत्यय शब्द बाधतुर पिछत लगा शबदांश, विश्वास, प्रतीति	थाजबा	विश्वास, भरमा	विश्वासमु	नंबिक्कै	विश्वासम्	नंबिके, विश्वास	विश्वास, जकीन	विश्वास, पातयाव	विश्वास	फोथायथि
प्रार्थी, प्रत्यासी	मीरेप	प्रार्थी, प्रत्याशी	अभ्यर्थि	अपेक्षकर, वेट्पाळर्	स्थानार्थि	उमेदुवार	मेदवार	प्रार्थी, उमीदबार	प्रत्याशी	बिजाथि, बिनायसा
प्रत्येक	खुदिङमक	प्रत्येक	प्रति-ओक्क	ओव्वेरु, तनियान	ओरो, प्रत्येकमाय	प्रतियोंदु	हरइक	झतम	प्रत्येक	साफ्रोमबो, मोनफ्रोमबो
प्रथम	अहान्बा	प्रथम	प्रथममु, मोदटि	मुदलावदु	प्रथमम्, ओन्नाम्, आद्यत्ते	प्रथम	पैह्ला	पायलो	प्रथम, पहिल	गिबि, सेथि, सिंगा
प्रथा, नियम	चत्नबी	प्रथा, नियम, रीति	परिपाटी	मरबु, वळक्कम्	पतिवुँ, कीळवळक्कं	रूढि, परिपाटी	रीत, परम्परा	परथा, नेयाम	प्रथा, परिपाटी	खान्थि, नेम
प्रदक्षिण परिक्रमा	कोइना माइकै मरिदा चत्पा परिक्रमा	प्रदक्षिण, परिक्रमा	प्रदक्षिण	प्रदक्षिणम्	प्रदक्षिणम् वलम् वरुदल्	प्रदक्षिणे	परदक्खना	परिक्रमा, ताड़ाम आचुर	प्रदक्षिणा	गिदिंखननाय
प्रदर्शनी	उत्पा, थेङहनबा	प्रदर्शनी	प्रदर्शन	पोरुट् काट्चि, कण् काट्चि	प्रदर्शनम्	प्रदर्शन	नमैश	उनुदुक्	प्रदर्शनी	दिन्थिफुंनाय
व्यवस्था	थौशिल, थौराङ् तौबा	व्यबस्था, प्रबंध	एर्पाटु	एर्पाडु	एर्प्पाटॅ	व्यवस्थे	बंदोबस्त, इंतजाम	बेबस्ता	प्रबंध	राहा

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

प्रवासी भारतीय दिवस

भारत की सांस्कृतिक-भाषिक विरासत का महाकुंभ

09 जनवरी– प्रवासी भारतीय दिवस, दुनियाभर में फैले हुए भारतीयों को अपने मूल देश, मूल संस्कृति और मूल भाषा से जोड़ने का महत्वपूर्ण दिन! वह दिन जब भारत सरकार अपने प्रवासी अथवा अनिवासी भारतीयों की उपलब्धियों और योगदान को समारोहपूर्वक मनाती है। भारत में जब पहली बार प्रवासी दिवस मनाया गया, उस दिन उन प्रवासी साहित्यकारों के उल्लास का बड़ा ही मार्मिक और भावुक चित्रण करते हुए डॉ. कमलकिशोर गोयनका लिखते हैं–'विश्व के लगभग 110 देशों में रहने वाले लगभग दो करोड़ भारतवंशी प्रवासियों ने पहली बार अनुभव किया कि उनकी मातृभूमि उन्हें भूली नहीं है।' इस कथन से भारतवंशियों का मातृभूमि के प्रति लगाव के साथ ही विश्व में प्रवासी भारतीयों की वृहत् संख्या का भी अनुमान मिलता है। भारत में 09 जनवरी, 2003 से प्रवासी दिवस मनाने की परंपरा प्रारंभ हुई। प्रवासी दिवस की इस अद्भुत योजना की परिकल्पना को डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने अपने श्रम और शोध से साकार किया। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी उस समय इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त थे तथा उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित अटल बिहारी वाजपेयी के संरक्षण में यह महत्वपूर्ण कार्य किया। 09 जनवरी को प्रवासी दिवस मनाने की परंपरा की गहरी संबद्धता महात्मा गांधी के प्रवास और लेखन से है। 09 जनवरी को महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से वापस आए थे और प्रवास समाप्त कर उन्होंने अपने देश के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसीलिए प्रवासी भारतीय दिवस मनाने के लिए 09 जनवरी की तिथि निर्धारित की गई। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजी, हिंदी और तमिल भाषाओं में 'इंडियन ओपिनियन' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला तथा रंगभेद और शोषण के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। 'हिन्द स्वराज' की रचना भी उन्होंने प्रवास के दौरान पानी के जहाज पर की थी।

प्रवासी भारतीय दिवस के माध्यम से देश अपने प्रवासी समुदाय के योगदान का सम्मान करता है। उनके अनुभवों, कौशल और विचारों का आदान-प्रदान करवाने के लिए एक मंच प्रदान करता है। प्रवासी भारतीय, भारतीय सामाजिक मूल्य और संस्कृति के संवाहक हैं तथा भारत और विश्व के बीच सेतु का कार्य करते हैं। इस आयोजन में सरकार और प्रवासी भारतीयों

प्रो. हेमांशु सेन

- हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ में प्रोफेसर पद पर कार्यरत
- गत 25 वर्षों से हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्यापन के अतिरिक्त, अनेक प्रशासनिक पदों पर कार्य किया है।
- स्नातक कक्षाओं हेतु पाँच पुस्तकों का संपादन एवं चार संदर्भ ग्रंथों का लेखन।
- 'एक और पहलू' नामक कहानी-संग्रह प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तीस से अधिक शोध आलेख, कविताओं और कहानियों का प्रकाशन। दूरदर्शन पर आयोजित कार्यक्रमों में सहभागिता रहती है।

संपर्क : मोबाइल– 9936099993

के बीच संवाद, नीति-निर्माण तथा सहयोग के लिए विभिन्न सत्र आयोजित होते हैं। समारोह में राष्ट्रपति उन प्रवासी भारतीयों या संस्थाओं को 'प्रवासी भारतीय सम्मान' से सम्मानित करते हैं, जिन्होंने विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा, कल्याण कार्य, समुदाय विकास और भारत के उद्देश्यों के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया हो। भारत सरकार अपने इन प्रवासी भारतीयों की सहायता से लगभग 133 देशों के साथ राजनयिक और सेवा पासपोर्ट धारकों हेतु वीजा से छूट संबंधी समझौता करने का प्रयास कर रही है। ECR (Emigration Check Required) श्रेणी के प्रवासी श्रमिकों के लिए बीमा योजना संचालित की जाती है। ई-वीजा प्रणाली ने प्रवासी भारतीयों के लिए भारत यात्रा को सुगम बनाया है। प्रवासी भारतीय विज्ञान, शिक्षा, प्रौद्योगिकी, बिजनेस, संस्कृति आदि के क्षेत्र में भारत की छवि को मजबूत कर रहे हैं। भारतीय डायस्पोरा द्वारा प्रतिवर्ष करोड़ों डॉलर भारत में भेजा जाता है, जो भारत के आर्थिक विकास में अहम भूमिका निभाता है। 2015 के पश्चात् प्रवासी भारतीय दिवस का

आयोजन दो वर्ष में एक बार किया जाता है। वर्ष 2025 में ओड़िशा की राजधानी भुवनेश्वर में 18वें प्रवासी भारतीय दिवस समारोह का आयोजन हुआ, जिसका मुख्य विषय था—'विकसित भारत में प्रवासी भारतीयों का योगदान'।

'प्रवासी' शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को देखें तो इसका अर्थ होता है—'परदेश में रहने वाला'। अर्थात् जो अपना देश छोड़कर किसी दूसरे देश में बस गया हो। इस प्रकार, प्रवासी लेखन का अर्थ हुआ—परदेश में रहकर अपने देश, अपनी संस्कृति, अपनी परंपरा का सरस और स्मृतिजन्य लेखन अपनी मातृभाषा में करना। प्रवासी लेखन वर्तमान समय में हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में स्वीकृत हो रहा है, परंतु इस साहित्य लेखन की मूल जड़ें गुलाम भारत से विदेशों को भेजे गए गिरमिटिया मजदूरों के प्रवास से जुड़ी हैं। विदेशी सत्ता के अत्याचारों से त्रस्त ये मजबूर-गरीब भारतीय मजदूर पानी के तिरते लहरों पर झूमते जहाज से विदेश चले गए और अपने साथ ले गए—अपने देश की संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज, गंगाजल, 'रामचरितमानस' और अपनी भाषा।

वर्तमान प्रवासी लेखन के उद्भव के संदर्भ में डॉ. कमलकिशोर गोयनका का मत है, "इसका आरंभ प्रेमचंद की 'यही मेरी मातृभूमि है' (1908) तथा 'शूद्रा' (1926) कहानियों से होता है। इन कहानियों में अमरीका से लौटे भारतीय प्रवासी तथा मॉरीशस ले जाये गए भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की कहानियाँ हैं। फिजी के संबंध में प्रवासी तोताराम और पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी की पुस्तकें (मर्यादा पत्रिका, 1929) (प्रवासी भारतीय, 1918) 'फिजी में भारतीय', 'फिजी की समस्या' प्रकाशित हुई और जनवरी, 1926 में प्रकाशित 'चाँद' के 'प्रवासी अंक' से भारतीय प्रवासी समाज की साहित्य में अवतारणा हुई।" उसी समय बनारसी दास चतुर्वेदी ने महात्मा गांधी से मिलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रवासी विभाग खोलने का प्रस्ताव रखा, जो सन् 1922 में कानपुर में स्वीकृत हुआ और अंततः बालेश्वर अग्रवाल ने बाद में प्रवासी भवन का कार्य पूरा किया। विभिन्न देशों से प्रकाशित पत्रिकाएँ—'बसन्त' (प्रवासी अंक, अंक-41, वर्ष 1984), 'दुर्गा', 'प्रवासी संसार', 'अभिव्यक्ति', 'अनुभूति' और अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा' ने प्रवासी साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने लोकसभा में प्रवासी भारतीय के स्थान पर 'भारतवंशी' शब्द का प्रयोग कर उन्हें भारत का अंग घोषित किया।

प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ और प्रख्यात भाषाविद् डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा प्रवासी भारतीयों को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं—1. रोमा वर्ग, 2. गिरमिटिया वर्ग और 3. 1950 ई. के बाद के भारतीयों का वर्ग।

प्रवासी लेखन के लिए अंग्रेजी में 'डायस्पोरा' (Diaspora) शब्द प्रचलित है। 'डायस्पोरा' का शाब्दिक अर्थ—'विकीर्णन', 'अलगाव', 'बिखराव' और 'निर्वासन' है। 'डायस्पोरा' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Disperse' से हुई है। 'डायस्पोरा' का प्रयोग एक मूल स्थान से बिखरकर अलग स्थानों पर निवास करने वाले प्रवासी के लिए किया जाता है। इसी कारण प्रवासी लेखन में निर्वासन और अलगाव का दर्द मुख्य रूप से प्रतिबिंबित होता है। प्रो. हरिमोहन के अनुसार, "डायस्पोरिक, डायस्पोरा और डायस्पोरन शब्दावली का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के समूह पर लागू होना चाहिए, जो विस्थापन के भाग्य को समान रूप से साझा करते हैं। एक अकेले व्यक्ति का किसी देश में प्रव्रजन (Migration) इसमें नहीं आता है। हमें निर्वासन (Exule) तथा आव्रजन (Immigration) के लेखन तथा डायस्पोरा के लेखकों के बीच सीमा रेखा खींचनी पड़ेगी।" इस दृष्टि से विचार किया जाए तो किसी एक देश को छोड़कर दूसरे देश में निवास करने वाले

एक व्यक्ति का साहित्य सामूहिकता बोध के साहित्य से भिन्न होगा, उसे प्रवासी साहित्य के अंतर्गत शामिल नहीं किया जा सकता। डॉ. कमलकिशोर गोयनका प्रवासी और आप्रवासी के संदर्भ में लिखते हैं, 'भारतेतर हिंदी साहित्य की पहचान अब दो रूपों में होती

डॉ. कमलकिशोर गोयनका प्रवासी और आप्रवासी के संदर्भ में लिखते हैं, 'भारतेतर हिंदी साहित्य की पहचान अब दो रूपों में होती है–प्रवासी भारतीयों का साहित्य और भारतवंशियों का साहित्य। भारतवंशियों के हिंदी साहित्य में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड आदि देशों का साहित्य आता है, जिनका जन्म इन देशों में हुआ है और ये लेखक भारतभूमि और उसकी संस्कृति, धर्म, परंपराओं आदि से स्वयं को जोड़े हुए हैं और प्रवासी साहित्य में अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, नार्वे, डेनमार्क आदि देशों में भारतीय प्रवासियों की पहली पीढ़ी का साहित्य आता है, जो बेहतर जीवन एवं शिक्षा के लिए इन देशों में गए और अपने हिंदी-प्रेम के कारण उसे अपनी अभिव्यक्ति की भाषा बनाया।'

है–प्रवासी भारतीयों का साहित्य और भारतवंशियों का साहित्य। भारतवंशियों के हिंदी साहित्य में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड आदि देशों का साहित्य आता है, जिनका जन्म इन देशों में हुआ है और ये लेखक भारतभूमि और उसकी संस्कृति, धर्म, परंपराओं आदि से स्वयं को जोड़े हुए हैं और प्रवासी साहित्य में अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, नार्वे, डेनमार्क आदि देशों में भारतीय प्रवासियों की पहली पीढ़ी का साहित्य आता है, जो बेहतर जीवन एवं शिक्षा के लिए इन देशों में गए और अपने हिंदी-प्रेम के कारण उसे अपनी अभिव्यक्ति की भाषा बनाया। इस प्रकार ये दो भिन्न धाराएँ होने पर भी प्रवासी भारतीयों तथा उनके वंशजों का हिंदी-साहित्य, प्रवासी भारतीय संवेदना एवं चेतना का व्यापक परिदृश्य प्रस्तुत करता है, जिसे भारत और भारतीयता के विस्तार के रूप में देखा जाना चाहिए।'

ध्यातव्य है कि 'प्रवासी' तथा 'आप्रवासी' शब्द भी भिन्न अर्थ रखते हैं। 'प्रवासी' वह है, जो अपने मूल देश को छोड़कर किसी दूसरे देश में स्थायी रूप से निवास करने लगा हो, वहीं 'आप्रवासी' वह है, जो किसी दूसरे देश से आकर इस देश में निवास कर रहा हो। संदर्भ में प्रवासी के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनमें अनिवासी (NRI), उत्प्रवासी (Emigrant), प्रवासी (Migrant), विस्थापन (Dispersal), निर्वासन (Exule), अप्रवास (Diaspora), प्रव्रजन (Migration), आप्रवास (Immigration), प्रवास (Migration) मुख्य हैं। आजकल विदेशों में रहने वाले भारतीयों के लिए 'प्रवासी भारतीय', 'अनिवासी भारतीय', 'आप्रवासी भारतीय' और 'एनआरआई' जैसे शब्दों का उपयोग किया जाता है, जिनके अलग-अलग अर्थ हैं, परंतु वर्तमान समय में हिंदी साहित्य में यह भेद होते हुए भी साहित्यिक धरातल पर इनका अध्ययन एक साथ ही किया जा रहा है। इन शब्दों के व्यवहार और प्रयोग के आधार पर समेकित और सामान्य वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

प्रवासी भारतीय (Migrant Indian)–वर्तमान समय में प्रवासी भारतीय एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें भारत से बाहर रहने वाले वे सभी लोग आते हैं, जिनका मूल भारत है, चाहे वे भारतीय नागरिक हों या भारतीय मूल के विदेशी नागरिक। प्रवासी भारतीय मुख्यतः वे लोग हैं, जिनकी जड़ें भारत से जुड़ी हैं, लेकिन वे विदेशों में बस गए हैं। जिस रूप में आज 'प्रवासी भारतीय' शब्द का व्यवहार हो रहा है, उसमें आप्रवासी भारतीय, प्रवासी भारतीय, अनिवासी भारतीय जैसे सभी शब्द समाहित हैं। प्रवासी भारतीय दिवस की संकल्पना भी इसके इसी समावेशी रूप को स्वीकृत करती है।

अनिवासी भारतीय (Non & Resident Indian)–अनिवासी वह व्यक्ति है, जो भारतीय नागरिक है, परंतु रोजगार, व्यापार या अन्य कारणों से एक निर्धारित अवधि से अधिक समय तक विदेश में रहता है, यानी 182 दिन से कम भारत और बाकी समय विदेश में रहता है।

आप्रवासी भारतीय (Aapravasi Bharatiya)–वे हैं, जिन्होंने भारत से बाहर जाकर स्थायी रूप से किसी अन्य देश की नागरिकता ले ली है। इन्हें अकसर भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO/OCI) भी कहा जाता है। आप्रवासी रोजगार, व्यापार और अपने उज्जवल भविष्य की तलाश में विदेश जाते हैं। इनमें स्वकेंद्रियता और उज्ज्वल भविष्य की उम्मीद की सामान्य प्रवृत्ति मिलती है।

आप्रवासी भारतीय मुख्य रूप से औपनिवेशिक काल में ऐसे भारतीयों के लिए इस्तेमाल किया जाता था, जिन्हें अनुबंध या श्रमिक के रूप में विदेश भेजा गया था, जैसे कि गिरमिटिया मजदूर फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, मॉरीशस आदि में भेजे गए। प्रवासी भारतीयों में सामूहिकता बोध है, देश के मधुर स्मृतियों की अभिव्यक्ति है, देश से दूर होने की वेदना है। इसी आधार पर प्रवासी साहित्य को कुछ विद्वानों ने 'नॉस्टेल्जिक साहित्य' माना है।

'हिंदी के प्रवासी साहित्य के सर्वेक्षण' लेख में कमल किशोर गोयनका ने भारतेतर देशों के निम्नलिखित वर्ग बनाए हैं–

1. गिरमिटिया मजदूरों के देशों का हिंदी साहित्य–इनमें मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, गयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिडाड एंड टुबैगो आदि शामिल हैं।

2. भारत के पड़ोसी देशों का हिंदी साहित्य–इन देशों में नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, श्रीलंका, म्याँमार (बर्मा) आदि देशों की गणना की जाती है।

3. विश्व के अन्य महाद्वीपों का हिंदी साहित्य—इन महाद्वीपों को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) अमेरिका महाद्वीप : संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा आदि।

(ख) यूरोप महाद्वीप : रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, नीदरलैंड, नॉर्वे, डेनमार्क, ऑस्ट्रिया, स्विट्जरलैंड, स्वीडन, फिनलैंड, इटली, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, रोमानिया, बल्गारिया, यूक्रेन, क्रोएशिया आदि।

(ग) मध्य-एशिया देशों का हिंदी साहित्य : इनमें अधिकांश मुस्लिम देश हैं—इराक, ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, तुर्की आदि।

(घ) एशिया महाद्वीप : चीन, जापान, कोरिया, थाईलैंड आदि।

(ङ) ऑस्ट्रेलिया आदि।

विदेश मंत्रालय की वेबसाइट के अनुसार, दुनियाभर के अनेक देशों में सबसे बड़ी संख्या में प्रवासी भारतीय संयुक्त राज्य अमेरिका में निवास करते हैं। मई, 2024 तक के आँकड़ों के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका में 54 लाख प्रवासी भारतीय हैं। इसके पश्चात्, संयुक्त अरब अमीरात में लगभग 34 लाख, मलेशिया में 25 लाख, कनाडा में 28-29 लाख, सऊदी अरब में 25 लाख, म्यांमार में 20 लाख, इंग्लैंड में 18.5 लाख, दक्षिण अफ्रीका में 17 लाख, श्रीलंका में 16 लाख, कुवैत में लगभग 10 लाख प्रवासी भारतीय निवास करते हैं।

हिंदी साहित्य में प्रवासी लेखन पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—

1. लोक साहित्य में इसका अर्थ होता है—देस अर्थात् गाँव से दूर।

2. शिष्ट भाषाओं के साहित्य में—देश अर्थात् भौगोलिक रूप से परिभाषित देश (country) से दूर। लोक साहित्य में 'देस' का अर्थ भौगोलिक सीमा रेखा में बँधा देश नहीं है। यहाँ 'देस' का अर्थ क्षेत्रीयता से है। इसी कारण लोक में गाँव छोड़कर बाहर जाने वाला हर व्यक्ति विदेश में जाने वाला होता है और बाहर से गाँव को आने वाला व्यक्ति 'परदेसी'। ऐसे विदेशी के लिए अथवा विदेशी के द्वारा अपनी संवेदनाओं, मनोभावों, परिस्थिति एवं मनःस्थिति का चित्रण लोक परंपरा में बखूबी मिलता रहा है। गाँव की युवती के लिए कलकत्ता में रह रहा उसका पति विदेसी 'बिदेसिया' हो जाता है। भोजपुरी लोकगीत का एक प्रख्यात रूप है—'बिदेसिया'। अपने लोक परिभाषा में इस प्रकार का साहित्य हर युग में होता आया है। संस्कृत में भी कालिदास का 'मेघदूतम' जैसा महाकाव्य भी सुदूर स्थित अपने प्रिय को अपने देश, काल, भाव परिवेश का ज्ञान कराता है। हिंदी में भक्ति काल का 'भ्रमर गीतसार' हो या हरिऔध की 'पवनदूतिका', यह भी इस दृष्टि से प्रवासी साहित्य है। आधुनिक काल की कृति 'प्रियप्रवास' में 'प्रवास' का चित्रण लोक परंपरा के अनुरूप ही हुआ है। इसमें प्रिय के दूर जाने, तद्जन्य पीड़ा, वियोग, वेदना, संवेदना और भावनाओं का मार्मिक वर्णन किया गया है।

प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने अपने साहित्य और जीवन में भारत को अपने हृदय में सँजोकर रखा है तथा जीवन के हर मूल्यवान और महत्वपूर्ण पलों में उनकी यह भावना दिखाई देती है। साहित्येतर क्षेत्रों में भी काम करने वाले प्रवासी भारतीयों में यह प्रवृत्ति प्रमुखता से पाई जाती है। नोबल पुरस्कार विजेता नायपाल और अमर्त्य सेन हों अथवा बुकर पुरस्कार से सम्मानित अनीता देसाई, अंतरिक्ष में उड़ान भरने वाली कल्पना चावला हों अथवा गुयाना, त्रिनीडाड और मॉरीशस के उच्चपदस्थ राजनेता—सबके हृदय में भारत बसता है।

प्रवासी साहित्यकार अपने मूल देश भारत की संस्कृति और ब्रिटिश उपनिवेश की संस्कृति के बीच हुए इस संघर्ष को अनुभव कर, वहाँ के मूल निवासियों और अपनी संस्कृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। वह दूसरे देश के सामाजिक,

सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश से जुड़ाव तो महसूस करता है, परंतु भारतीय संस्कृति को भी विस्मृत नहीं करता।

प्रमुख प्रवासी भारतीय साहित्यकारों में मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, मधुकर, मुनीश्वर चिंतामणि, इंद्रदेव भोला, डॉ. वीरसेन जागा सिंह, हरिनायक सीता और अजामिल माताबदल प्रमुख हैं। अमेरिका के प्रमुख रचनाकारों में सुषमा बेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पुष्पा सक्सेना, डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह, वेद प्रकाश बटुक, डॉ. अंजना संधीर, आदि हैं। इंग्लैंड के रमेश पटेल, दिव्या माथुर, तेजेंद्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, कादम्बरी मेहता, गौतम सचदेव, कीर्ति चौधरी आदि हैं। ऑस्ट्रेलिया के रेखा राजवंशी, कनाडा की शैलजा सक्सेना, जापान के नीलम मलकानियाँ, डेनमार्क की अर्चना पैन्यूली, नार्वे के सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक', चीन की अनीता शर्मा आदि ने विश्व-पटल पर भारत की भाषा, भारत का साहित्य एवं भारतीय संस्कृति की सार्थक, सजीव एवं रचनात्मक उपस्थिति दर्ज की है।

युवाओं के प्रेरणापुंज स्वामी विवेकानंद

"उठो, जागो और तब तक नहीं रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।"

उपरोक्त आदर्श वाक्य भारत ही नहीं, विश्वभर के उन असंख्य युवाओं के लिए बरसों से ऐसा अमृत संदेश बना हुआ है, जिन्होंने स्वामी विवेकानंद के जीवन-दर्शन को समझा और अपनाया है। स्वामी विवेकानंद विश्व-प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु होने के साथ-साथ ओजस्वी विचारक, प्रखर वक्ता, समाज सुधारक और महान देशभक्त भी थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति, योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, खेल और ग्रामीण विकास जैसे विभिन्न क्षेत्रों के लिए अपने अनुपम कार्यों से जो योगदान दिया वह सब स्वर्णाक्षरों में अंकित है। युवाओं के लिए तो वे आज भी ऐसे प्रेरणापुंज हैं कि उनके विचारों के श्रवण और अध्ययन मात्र से ही असफल और निराश व्यक्तियों के तन-मन को संजीवनी मिल जाती है। उनके युवाओं के लिए दिये गए संदेशों में आज भी अनेक संदेश प्रचलित हैं। जैसे—'एक समय में एक ही काम करो और अपनी पूरी शक्ति, पूरी आत्मा उस काम के लिए समर्पित कर दो।' फिर यह भी, 'जिस समय जिस कार्य के लिए प्रतिज्ञा करो, ठीक उसी समय उसे कर दो। अन्यथा लोगों का आपसे विश्वास उठ जाएगा।' ऐसे ही उनका यह संदेश है, 'एक विचार को अपना जीवन बना लो। उसी विचार को जियो, उसी के सपने देखो। उसी विचार को अपने शरीर के हर हिस्से में उतार लो। अन्य सभी विचारों को किनारे रख दो। सफल होने का यह ही एकमात्र तरीका है।' विवेकानंद ने यह भी कहा, 'ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ पहले से ही हमारी हैं। लेकिन हम अपनी आँखों पर हाथ रखकर रोते हुए कहते हैं—कितना अंधकार है।'

यही कारण है कि स्वामी विवेकानंद का दर्शन बरसों बाद भी प्रासंगिक और आदर्श बना हुआ है। उनके विचार और वाणी यूँ तो सभी वर्ग में असीमित ऊर्जा भरते रहे हैं, लेकिन युवाओं के प्रति स्वामी विवेकानंद के हृदय-पटल पर विशेष स्नेह और अत्यंत विश्वास था। इसलिए स्वामी जी सदा युवाओं के अच्छे स्वास्थ्य, उनकी आत्मिक शक्ति, नैतिकता और उनके चरित्रवान होने

प्रदीप सरदाना

विगत पाँच दशकों से लेखन, पत्रकारिता और काव्य की दुनिया में सक्रिय। टेलीविजन पत्रकारिता से भी संबद्ध। कुछ वृत्त-चित्रों और नाटकों का निर्माण, निर्देशन भी कर चुके हैं।

सम्मान : अनेक पुरस्कारों से सम्मानित, जिनमें महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कार, हिंदी अकादमी, अभ्युदय अंतरराष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार 'रत्नश्री', ताज रत्न और प्रसार भारती आकाशवाणी सम्मान शामिल हैं।

संप्रति : वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार, कवि, फिल्म-समीक्षक और टीवी पैनलिस्ट। देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र, पत्रिकाओं, वेब पोर्टल, आकाशवाणी और न्यूज चैनल्स से जुड़े होने के साथ-साथ 'पुनर्वास' साप्ताहिक और www.punarvasonline.com के संस्थापक, संपादक। विभिन्न संस्थानों में अतिथि शिक्षक एवं लेखकों, कलाकारों और पत्रकारों की संस्था 'आधारशिला' के अध्यक्ष भी।

संपर्क : मोबाइल— 9555826269
ईमेल— pradeepsardana29@gmail.com

पर बल देते रहे। युवाओं को भी उनके संदेशों ने इतना प्रभावित किया कि वे सब स्वामी जी के होकर रह गए। यहाँ तक कि उनकी जन्म तिथि को भारत में युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है।

42वाँ राष्ट्रीय युवा दिवस है यह

विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कोलकाता में हुआ था। इधर, संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1984 को 'अंतरराष्ट्रीय युवा वर्ष' घोषित किया तो भारत सरकार ने उसी वर्ष से 12 जनवरी को राष्ट्रीय युवा दिवस मनाने की घोषणा कर दी। तभी से स्वामी विवेकानंद की जन्म तिथि को भारत में युवा दिवस मनाने की परंपरा बन गई है।

इस वर्ष यह 42वाँ राष्ट्रीय युवा दिवस है। हालाँकि, पहले बहुत बरसों तक युवा दिवस का आयोजन बहुत ही सीमित रूप में होता रहा, परंतु अब युवा दिवस व्यापक स्तर पर हर्षोल्लास के साथ मनाया जाने लगा है।

विवेकानंद का दर्शन आज भी सार्वभौमिक

स्वामी विवेकानंद की 12 जनवरी, 2026 को 163वीं जयंती है। जबकि 04 जुलाई, 2026 को उन्हें महासमाधि लिये 124 वर्ष हो जाएँगे, लेकिन इतने वर्ष बाद भी स्वामी विवेकानंद के लिए करोड़ों व्यक्तियों का प्रेम और सम्मान स्पष्ट झलकता है। देखा जाए तो इतने बरसों में कितना कुछ बदल गया, लेकिन स्वामी विवेकानंद का दर्शन आज भी सार्वभौमिक है। उनके विचार भटके और भ्रमित युवाओं को सुख और प्रसन्नता का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

विवेकानंद के बाल्यकाल को देखें तो उनका मूल नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। नरेंद्र के पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय के बेहद सफल और प्रतिष्ठित वकील थे। इनकी माताश्री भुवनेश्वरी देवी भगवान शिव की अनन्य भक्त और धर्मपरायण महिला थीं। हालाँकि, बचपन में नरेंद्र जहाँ कुशाग्र बुद्धि के थे, वहीं वह नटखट भी बहुत थे। साथ ही, साधु-संन्यासियों और पशु-पक्षियों के प्रति भी उनकी विशेष श्रद्धा थी। इधर, माँ ने नरेंद्र की शरारतों पर लगाम कसने के साथ उन्हें रामायण-महाभारत का ज्ञान देना शुरू कर दिया। करीब सात साल की उम्र में तो उन्हें रामायण के कई हिस्से कंठस्थ हो गए थे। वह सीता-राम की एक मूर्ति लाकर उनकी पूजा के साथ ध्यानमग्न भी होने लगे।

एक बार पढ़ते ही सब कंठस्थ

बाद में, नरेंद्र पंडित ईश्वरचंद विद्यासागर के शैक्षिक संस्थान में पढ़ने लगे। वह जो भी एक बार पढ़ते या सुनते वह ज्यों-का-त्यों उनकी स्मृति में अंकित हो जाता। पढ़ाई के साथ योग और विभिन्न खेलों में उनकी रुचि भी बचपन में ही ऐसी जागृत हुई कि उनकी अलौकिक प्रतिभा सभी के लिए आकर्षण का केंद्र बन गई। उनके जीवन की यह बात भी आश्चर्यजनक है कि जब वह 25 वर्ष के हुए तब तक रामायण, महाभारत, गीता, वेद पुराण, गुरु ग्रंथ साहिब ही नहीं, बाइबल, कुरान के भी वे महान ज्ञाता बन गए थे। यहाँ तक कि साहित्य, संगीत, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, कला, विज्ञान, पूँजीवाद के साथ विभिन्न दर्शन भी उनके मन-मस्तिष्क में पूरी तरह घर कर चुके थे। वह जल्द ही तैराकी, घुड़सवारी के साथ कुश्ती और फुटबॉल के भी अच्छे खिलाड़ी बन गए। ध्यान और योग उनके जीवन का नित्य कर्म था। फिर, 'नर सेवा नारायण सेवा' तो उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य ही रहा। किसी भी रोगी, निर्धन और असहाय की सहायता कर उन्हें परम सुख मिलता।

उनकी उपलब्धियों को देख बच्चे, किशोर या युवा जब भी उनसे उनकी सफलता का मंत्र पूछते तो वे कहते, 'तुम जो सोचोगे वही हो जाओगे। यदि तुम स्वयं को कमजोर समझोगे तो कमजोर बन जाओगे, यदि बलवान समझोगे तो बलवान हो जाओगे। यह कभी मत कहो कि यह मैं नहीं कर सकता। आप अनंत हैं, आप कुछ भी कर सकने में समर्थ हैं। जो व्यक्ति प्रातः काल उठकर यह नहीं सोचता कि आज उसे क्या करना है, वह अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता।' वह यह भी कहते थे कि जो युवा संघर्ष से घबराते हैं उन्हें बता देना चाहता हूँ, 'संघर्ष जितना बड़ा होगा, सफलता उतनी ही शानदार होगी।'

नरेंद्र की रामकृष्ण परमहंस से भेंट

जब नरेंद्र को धर्म, अध्यात्म, विज्ञान आदि का परम ज्ञान हो गया तो उनके जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घटीं कि उन्हें ईश्वर के अस्तित्व को लेकर कई प्रश्न घेरने लगे। वह सोचते यदि ईश्वर है तो भक्ति से उसके प्रत्यक्ष दर्शन होने ही चाहिए। तब वह सत्य की खोज में व्याकुल हो गए। इसी खोज में वह एक दिन नवंबर 1881 में, कोलकाता से कुछ दूरी पर स्थित दक्षिणेश्वर काली मंदिर के उपासक रामकृष्ण परमहंस के यहाँ पहुँच गए। रामकृष्ण 18 वर्षीय नरेंद्र को देखते ही पहचान गए कि यह वही युवक है, जिसके आगमन की उन्हें प्रतीक्षा थी। उधर, रामकृष्ण के रहस्यवादी व्यक्तित्व ने नरेंद्र को भी प्रभावित

किया। नरेंद्र ने उन्हें अपना गुरु बना लिया। नरेंद्र इस दौरान कोलकाता में पहले प्रेसिडेंसी कॉलेज और फिर स्कॉटिश चर्च कॉलेज में पढ़ते भी रहे और दक्षिणेश्वर आकर गुरु ज्ञान भी प्राप्त करते रहे।

संन्यास के बाद 1888 में नरेंद्र बारानगर मठ छोड़ पैदल ही एक घुमक्कड़ साधु के रूप में भारत-दर्शन के लिए निकल पड़े। संन्यास के बाद नरेंद्र को कुछ लोगों ने सच्चिदानंद नाम दिया। बाद में उन्हें विविदिषानंद भी कहा जाने लगा। देश के विभिन्न राज्यों से होते हुए 04 जून, 1891 को राजस्थान के खेतड़ी के शेखावत रियासत के राजा अजीत सिंह ठाकुर के यहाँ पहुँचे। खेतड़ी में उनके आगमन ने नरेंद्र का जीवन ही बदल दिया। अजीत सिंह उनसे पहली मुलाकात में ही बेहद प्रभावित हो गए।

लेकिन कॉलेज का परीक्षा परिणाम आने से पूर्व नरेंद्र के पिता विश्वनाथ का निधन हो गया। इससे नरेंद्र और उनके परिवार का अच्छा-भला और संपन्न जीवन बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया। नरेंद्र तब 21 वर्ष के थे। पिता के जाते ही आर्थिक संकटों ने इन्हें हिलाकर रख दिया। माँ के साथ दो बहनों और दो छोटे भाइयों की जिम्मेदारी भी नरेंद्र के कंधे पर आ गई। फिर इनके जीवन में बड़ा परिवर्तनकारी मोड़ तब आया जब रामकृष्ण के महासमाधि लेने के बाद नरेंद्र ने बारानगर मठ में जनवरी 1887 में, 25 वर्ष की आयु में संन्यास ले लिया।

खेतड़ी के राजा अजीत सिंह से मिलन

संन्यास के बाद 1888 में नरेंद्र बारानगर मठ छोड़ पैदल ही एक घुमक्कड़ साधु के रूप में भारत-दर्शन के लिए निकल पड़े। संन्यास के बाद नरेंद्र को कुछ लोगों ने सच्चिदानंद नाम दिया। बाद में उन्हें विविदिषानंद भी कहा जाने लगा। देश के विभिन्न राज्यों से होते हुए 04 जून, 1891 को राजस्थान के खेतड़ी के शेखावत रियासत के राजा अजीत सिंह ठाकुर के यहाँ पहुँचे। खेतड़ी में उनके आगमन ने नरेंद्र का जीवन ही बदल दिया। अजीत सिंह उनसे पहली मुलाकात में ही बेहद प्रभावित हो गए।

ऐसे मिली पगड़ी और विवेकानंद नाम

अजीत सिंह के साथ उनके इतने अच्छे संबंध हो गए कि वह करीब पाँच महीने वहीं रुके। स्वामी जी के इसी प्रवास के दौरान जून की भीषण गर्मी के दिनों से बचाव के लिए, अजीत सिंह ने उन्हें सम्मान स्वरूप एक राजस्थानी पगड़ी भेंट की। बाद में वही पगड़ी स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान बन गई। एक अंतराल के बाद, अप्रैल 1893 में, विविदिषानंद दूसरी बार खेतड़ी गए। तब अजीत सिंह ने स्वामी जी को शिकागो के 'विश्व धर्म सम्मेलन' में जाने के लिए प्रेरित किया। राजा ने उनकी यात्रा, आवास और खान-पान के साथ उनकी माताश्री का खर्च उठाने का भी जिम्मा ले लिया। साथ ही, अजीत सिंह ने कहा कि अमेरिका में लोगों को उनका विविदिषानंद नाम बोलने में कठिनाई होगी, इसलिए वह अपना नाम स्वामी विवेकानंद रख लें। स्वामी जी ने उनका सुझाव मानते हुए अपना नाम विवेकानंद रख लिया। आगे चलकर इसी नाम ने जिस प्रकार हमारे धर्म और संस्कृति की पताका विश्वभर में पहुँचाई उसकी गूँज आज भी है। लेकिन यदि राजा अजीत उनकी सहायता नहीं करते तो उस समय अमेरिका जाने के लिए सोचना भी संभव नहीं था। स्वामी विवेकानंद ने एक बार कहा था, 'मेरे जीवन के एकमात्र सच्चे और अच्छे दोस्त हैं अजीत सिंह।'

शिकागो के व्याख्यान से ही अमर हुए विवेकानंद

शिकागो में 11 सितंबर, 1893 को दिया गया वह आध्यात्मिक व्याख्यान ही था, जिसने विवेकानंद को अमर कर दिया। विश्व के कितने ही विद्वान और धर्मगुरुओं के सम्मुख स्वामी विवेकानंद के भारत की महान और प्राचीन धर्म संस्कृति के महत्व को समझाते उस व्याख्यान पर आज भी संपूर्ण भारत गर्व करता है। इसके बाद भारत का विश्व में इतना मान बढ़ा कि विवेकानंद ने सभी को जता दिया कि भारत एक दिन विश्वगुरु बनेगा।

भारत लौटने के पश्चात् विवेकानंद ने 1897 में 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। मिशन ने आध्यात्मिक ज्ञान के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और आपदा सेवा के साथ बहुत-से बड़े कार्य कर यह संदेश भी दिया, 'जो भी तुम्हें कमजोर बनाता है, उसे त्याग दो। स्वयं पर विश्वास करो। हम सभी को गर्व के साथ सभी जगह खुलकर कहना चाहिए, हम भारतीय हैं।'

हालाँकि, स्वामी विवेकानंद ने 04 जुलाई, 1902 को मात्र 39 वर्ष की आयु में इस दुनिया को अलविदा कह दिया, लेकिन वह यह संदेश भी दे गए कि 'जिंदगी लंबी नहीं, बड़ी होनी चाहिए'।

सच, इनसान इतना शक्तिशाली है कि वह चाहे तो कुछ बरसों में ही शताब्दियों जितना काम कर सकता है।

डिजिटल युग में पुस्तक मेलों की प्रासंगिकता

डिजिटल क्रांति ने दुनिया के हर कोने में अपने कुशल, त्वरित और आकर्षक साधनों का विस्तार किया है। पढ़ने-लिखने और ज्ञानार्जन की पारंपरिक प्रक्रियाओं को चुनौती देने वाली इस क्रांति के बीच पुस्तकें अपने स्वरूप को लेकर भले ही नये प्रयोगों में ढल रही हों, परंतु उनका जादू आज भी बरकरार है। इसकी आत्मा की रक्षा, संवर्धन और उत्सव का नाम पुस्तक मेला है। किताबों के इस जादू को

स्वतंत्र शुक्ल

जन्म : 1978, हजारीबाग, झारखंड

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक

प्रकाशन : असुर गाथा शृंखला अंतर्गत खंड काव्य 'त्रिलोकपति रावण', 'संभावनाओं का शहर' (कविता-संग्रह), 'संजना' (उपन्यास) 'दायरे में युद्ध' (प्रकाशनाधीन कविता-संग्रह), 11 संपादित पुस्तकें, एक रचनावली का संकलन व संपादन। देश-विदेश के विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ, लघुकथा, आलेख और रिपोर्ट प्रकाशित। कहानियों का ऑल इंडिया रेडियो से प्रसारण एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

सम्मान : विभिन्न मंचों और संस्थाओं द्वारा लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र में सम्मानित।

संप्रति : लेखक, संपादक और संस्थापक, स्वतंत्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

संपर्क : मोबाइल– 9811188949

ईमेल– sushilswatantra@gmail.com

जिंदा रखने में दुनिया के कोने-कोने में लगने वाले पुस्तक मेलों का अहम योगदान है। यह केवल किताबों की बिक्री का स्थान नहीं, बल्कि वह सांस्कृतिक धड़कन है, जो दुनिया को यह याद दिलाती है कि तकनीक चाहे जितनी भी उड़ान भर ले, मानव-मन की डोर पुस्तकों के पन्नों से ही बँधी रहेगी।

पन्नों को स्पर्श करने का सुख, किताब को पढ़ते-पढ़ते पन्ने के ऊपरी कोने को मोड़कर तकिये के नीचे रख देने का सुख, अचानक किसी पुरानी किताब से सूखे हुए फूल के मिलने पर यादों के समंदर में गोते लगाने का सुख, किसी स्क्रीन से पा लेना संभव ही नहीं है। डिजिटल युग में जहाँ स्क्रीन पर पढ़ने की सुविधाएँ बढ़ीं, वहीं ध्यान भटकने, सतही जानकारी के बहाव और सामग्री की तात्कालिकता ने पढ़ने के पारंपरिक आनंद को कमजोर भी किया। ऐसे वातावरण में पुस्तक मेले किसी आश्वस्ति की तरह सामने आते हैं। वे हमें यह भरोसा दिलाते हैं कि पढ़ने का अर्थ केवल सूचना प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन के अर्थ, सौंदर्य और बौद्धिकता से जुड़ा होना है। पुस्तक मेलों के विशाल प्रांगण में कदम रखते ही पाठक अचानक एक ऐसे संसार में प्रवेश करता है, जहाँ पठन-पाठन केवल कोई पर्यटन कार्य नहीं है, बल्कि एक भावानुभूति, एक सामूहिक स्मृति और समाज की रचनात्मक चेतना का हिस्सा है।

डिजिटल माध्यमों ने आधुनिक पीढ़ी के सामने पढ़ने के अनगिनत विकल्प रख दिए हैं, लेकिन इन विकल्पों के बीच भावनात्मक संबंध अकसर दुर्लभ हो जाता है। पुस्तक मेला इस भावनात्मक खोखलेपन को भर देता है। यहाँ पुस्तक को हाथ में लेकर महसूस करने की अनुभूति, लेखक से प्रत्यक्ष संवाद, नए विषयों की खोज, पुरानी पुस्तकों की सुवास और पुस्तक-प्रेमियों की भीड़ में अकेले भी एक अजीब-सी आत्मीयता का अनुभव, ये सभी मिलकर पढ़ने की उस परंपरा को जीवित रखते हैं, जो सदियों से मानव सभ्यता की रीढ़ रही है।

दुनियाभर में पुस्तक मेलों की लोकप्रियता कम होने की बजाय निरंतर बढ़ रही है। चाहे नई दिल्ली का विश्व पुस्तक मेला हो, कोलकाता का ऐतिहासिक पुस्तक मेला, फ्रैंकफर्ट और लंदन के अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले हों या शारजाह का उभरता हुआ वैश्विक पुस्तक समारोह, हर जगह यह स्पष्ट दिखता है कि डिजिटलीकरण के बावजूद पाठक समुदाय की जड़ें अब भी पुस्तकों की मिट्टी में गहरी धँसी हुई हैं।

इन मेलों ने केवल पुस्तकों को प्रदर्शित ही नहीं किया, बल्कि इन्होंने विचारों का आदान-प्रदान, सांस्कृतिक विविधता की साझेदारी और समाज के बौद्धिक निर्माण की प्रक्रिया को भी नई दिशा दी है। लेखक अपने पाठकों से आमने-सामने मिलते हैं, अनुवादकों को नए अवसर मिलते हैं, प्रकाशक नए लेखकों को पहचानते हैं और पाठक अपनी रुचि के नए संसारों से परिचित होते हैं। इस प्रकार, पुस्तक मेला केवल एक व्यापारिक आयोजन नहीं है, बल्कि सृजनात्मक समुदायों का संगम बनकर उभरता है।

इस डिजिटल युग में जब ई-बुक्स, ऑडियो बुक्स और ऑनलाइन सामग्री ने पढ़ने के रूपों को विविधतापूर्ण बनाया है, तब पुस्तक मेलों ने इस विविधता को स्वीकारते हुए स्वयं को रूपांतरित किया है। डिजिटल साधन पुस्तक को अधिक सुलभ बनाते हैं और पुस्तक मेलों का जीवंत वातावरण पढ़ने की प्रेरणा देता है।

मानव सभ्यता की यात्रा जितनी पुरानी है, उतनी ही पुरानी है ज्ञान की खोज की कहानी। जब मनुष्य ने पहली बार पत्थर पर आकृतियाँ उकेरी थीं, तब शायद उसे यह अनुमान भी नहीं रहा होगा कि भविष्य में वही प्रवृत्ति न सिर्फ भाषा को जन्म देगी, बल्कि शब्दों को इतने व्यापक और शानदार स्वरूप में स्थापित करेगी कि मनुष्य युगों के पार संवाद कर सकेगा। पुस्तकें इस संवाद की सबसे प्रामाणिक, विश्वसनीय और स्थायी वाहक बनीं।

भारत में ज्ञान का महाकुंभ कहा जाने वाला 'नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला' का आगामी आयोजन नए वर्ष में 10 से 18 जनवरी, 2026 को होने जा रहा है। यह भारतीय सांस्कृतिक और शैक्षिक जीवन के उन कुछ आयोजनों में से एक है, जिन्हें केवल एक वार्षिक कार्यक्रम कह देना अनुचित होगा। यह भारत की बौद्धिक चेतना, उसकी भाषायी विविधता और उसके विशाल पाठक-समुदाय का महापर्व है। 18 मार्च से 04 अप्रैल, 1972 को जब नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने यूनेस्को के सहयोग से इसका पहला आयोजन किया, तब शायद किसी ने नहीं सोचा था कि यह मेला आने वाले वर्षों में एशिया के सबसे बड़े, सबसे प्रभावशाली और सबसे प्रतिष्ठित बौद्धिक आयोजनों में से एक बन जाएगा। आरंभिक वर्षों में यह प्रकाशकों और पाठकों के सीमित दायरे तक सीमित था, लेकिन धीरे-धीरे यह भारत की बढ़ती साक्षरता, विस्तृत हो रहे शिक्षण संस्थानों और नई पीढ़ी की ज्ञान-जिज्ञासा के सहारे फलता-फूलता गया।

भारत की बहुभाषिकता इस मेले की सबसे अनोखी धुरी है। हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू के विशाल प्रकाशनों के साथ-साथ बाँग्ला, तमिल, मलयालम, तेलुगु, मराठी, असमिया, पंजाबी, कन्नड़, कोंकणी, ओड़िया, नेपाली और यहाँ तक कि संथाली हो या मुंडारी, कुड़ुख, पंच-परगनिया तथा बोडो जैसे जनजातीय भाषाओं के साहित्य इस मेले में जिस तरह दिखाई देते हैं, वह अपने आप में भारत का जीवंत सांस्कृतिक नक्शा प्रतीत होता है। यह विविधता न केवल भारतीय भाषाओं की संपन्नता को प्रमाणित करती है, बल्कि यह भी सिद्ध करती है कि भारत में पाठक आज भी उतनी ही उत्सुकता से पढ़ता है, जितनी किसी भी डिजिटल नवयुगीन संस्कृति से परे एक संवेदनशील मनुष्य पढ़ सकता है।

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले की ऐतिहासिक यात्रा कई मायनों में भारत की सामाजिक प्रगति की यात्रा भी है। 1980 और 1990 के दशकों में जब भारत में प्रकाशन उद्योग तेजी से विकसित होने लगा, तब इस मेले ने न केवल नए लेखकों और प्रकाशकों को राष्ट्रीय मंच प्रदान किया, बल्कि विदेशी प्रकाशकों को भारतीय पाठक-समुदाय की शक्ति का एहसास भी कराया। उसी समय से इस मेले में 'थीम-देश' की अवधारणा शुरू हुई, जिसने इसे एक सांस्कृतिक अंतरराष्ट्रीय मंच में बदल दिया, जहाँ भारतीय और विदेशी साहित्यिक परंपराएँ मिलकर नए विमर्श और नए साहित्यिक प्रयोगों को जन्म देने लगीं।

आज यह मेला केवल पुस्तकों की प्रदर्शनी नहीं है। यह लेखकों, अनुवादकों, शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों, प्रकाशकों और डिजिटल कंटेंट निर्माताओं का ऐसा समागम है, जहाँ नए मानव-बुद्धि और अभिरुचियाँ विस्तार पाती हैं। बच्चों के साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए निर्मित 'चिल्ड्रन'स पैवेलियन' जैसे सेक्शन इस बात का प्रमाण हैं कि भारत भविष्य के पाठकों को तैयार करने के लिए कितनी गंभीरता से काम कर रहा है। वहीं 'लेखक मंच', 'ऑथर्स कॉर्नर' और 'थीम पैवेलियन' साहित्यिक विमर्श का मैदान हैं, जहाँ किसी-किसी दिन भारत के सबसे प्रतिष्ठित लेखक और विचारक एक ही मंच पर अपने विचार साझा करते हैं।

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला केवल एक आयोजन नहीं, बल्कि यह सांस्कृतिक मेले का प्रतीक है, जिसे देखकर लगता है कि भले ही विश्व डिजिटल युग में प्रवेश कर चुका है, लेकिन किताबों की दुनिया आज भी उतनी ही जीवंत, उतनी ही उत्साहपूर्ण और उतनी ही व्यापक है। यह वह जगह है, जहाँ लोग भीड़ में भी अपने लिए किसी पुस्तक के पन्नों में एकांत का संसार रच लेते हैं, जहाँ बच्चे पहली बार किसी कहानी की किताब लेकर अपनी कल्पनाओं की उड़ान शुरू करते हैं, जहाँ शोधकर्ता किसी दुर्लभ ग्रंथ को देखकर उसी क्षण अपने शोध को नई दिशा दे देते हैं और जहाँ प्रकाशक किसी नए लेखक से मिलकर भविष्य की एक नई साहित्यिक धारा की नींव रख देते हैं।

भारत, जहाँ भाषाएँ बदलते भूगोल के साथ ही नहीं, बल्कि मौसमों, परंपराओं और जीवन-शैली के साथ बदलती हैं, वहाँ पुस्तक

मेलों का स्वरूप भी अद्भुत रूप से विविध है। कोलकाता अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला इस विविधता का सबसे सुंदर उदाहरण है। यह विश्व का सबसे बड़ा पाठक-केंद्रित पुस्तक मेला है। कोलकाता की पहचान सामाजिक नव-जागरण और सांस्कृतिक-साहित्यिक आंदोलनों की भूमि के रूप में रही है। टैगोर, बंकिम, विद्यासागर, नज़रुल, शरतचंद्र और अनेक विचारकों की परंपरा ने इस शहर को किताबों की राजधानी में बदल दिया है।

इसी प्रकार, चेन्नई, बेंगलुरु, भोपाल, पटना, राँची, जयपुर, अहमदाबाद, पुणे और नागपुर जैसे शहरों में भी उभरते हुए पुस्तक मेलों की अपनी पहचान है। भोपाल पुस्तक मेला मध्य भारत की साहित्यिक परंपरा को सामने लाता है, जहाँ हिंदी के साथ-साथ उर्दू, बुंदेली, मालवी और छत्तीसगढ़ी साहित्य भी बराबर महत्व पाता है। जयपुर भले ही अपने 'जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल' के लिए प्रसिद्ध हो, लेकिन वहाँ का पुस्तक मेला भी धीरे-धीरे एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभर रहा है, जहाँ साहित्यिक विमर्श और पुस्तक प्रकाशन, दोनों का संतुलन है।

इसी तरह, अगर देश के बाहर आयोजित होने वाले पुस्तक मेलों पर नजर डालें तो हम पाएँगे कि विश्व के पुस्तक मेलों का इतिहास बहुत पुराना है। यूरोप के मध्यकालीन बाजारों में जब पहली बार पांडुलिपियाँ बेची जाती थीं, तभी से इन मेलों ने धीरे-धीरे अपना आधुनिक स्वरूप तैयार किया। आज दुनिया के प्रतिष्ठित पुस्तक मेलों में जर्मनी का फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेला सबसे अग्रणी है। यह न केवल दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तक मेला है, बल्कि यह वैश्विक प्रकाशन उद्योग की धुरी भी है। इसका इतिहास पंद्रहवीं सदी तक जाता है, जब गुटेनबर्ग द्वारा छपाई मशीन के आविष्कार के बाद पहली बार यहाँ पुस्तकों का व्यापारिक आदान-प्रदान शुरू हुआ। फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेला प्रकाशन जगत की सबसे महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय बैठकों का केंद्र है। यहाँ से कॉपीराइट, अनुवाद-अधिकार, फिल्म-राइट्स, ई-बुक्स और डिजिटल कंटेंट जैसी बहुस्तरीय गतिविधियाँ संचालित होती हैं। दुनिया के लगभग सभी प्रमुख प्रकाशक इस मेले में उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार, लंदन पुस्तक मेला भी वैश्विक प्रकाशन जगत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयोजन है। यह दुनिया में अंग्रेजी भाषा के प्रकाशन उद्योग के सबसे बड़े केंद्रों में से एक है। यहाँ साहित्यिक एजेंट, अनुवादक, प्रकाशन संस्था, डिजिटल कंटेंट निर्माता, पुस्तकालयाध्यक्ष और लेखक एक साथ मिलकर न केवल व्यावसायिक समझौते करते हैं, बल्कि पुस्तक-उद्योग के भविष्य पर गहन विचार-विमर्श भी करते हैं।

मध्य-पूर्व में शारजाह अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला एक असाधारण उदाहरण है, जिसने केवल कुछ दशकों में विश्व के टॉप-तीन पुस्तक मेलों में अपनी जगह बना ली है। यह केवल पुस्तक मेला नहीं, बल्कि अरब दुनिया की सांस्कृतिक धड़कन है। यहाँ बच्चों का साहित्य, बहुभाषी अनुवाद, अंतरराष्ट्रीय लेखक, साहित्यिक परंपराएँ और पुस्तक संस्कृति मिलकर एक विशाल सांस्कृतिक समागम रचती है।

अफ्रीका में काहिरा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला अपनी विशिष्टता के लिए जाना जाता है। मिस्र की समृद्ध सभ्यतागत विरासत और उसकी बौद्धिक परंपरा इस मेले में रेखांकित होती है। अरब दुनिया में ज्ञान की परंपरा बहुत पुरानी है और काहिरा पुस्तक मेला इसमें एक सेतु का काम करता है।

एशिया में बीजिंग अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला और टोक्यो अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला भी प्रकाशन उद्योग के प्रमुख केंद्रों में हैं। बीजिंग का मेला तकनीक और परंपरा का मिश्रण है, जहाँ चीनी भाषा के विशाल साहित्यिक भंडार के साथ-साथ वैश्विक प्रकाशकों की भागीदारी भी देखने को मिलती है।

लैटिन अमेरिका में मेक्सिको का 'ग्वाडलजारा पुस्तक मेला' सबसे प्रतिष्ठित है। यहाँ स्पेनिश भाषा के साहित्य की समृद्धि दिखाई देती है। यह लैटिन अमेरिका और स्पेनिश भाषी दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तक मेला है।

इस प्रकार, विश्व के लगभग सभी महाद्वीपों में पुस्तक मेलों की एक सशक्त और जीवंत परंपरा है, जो इस बात का प्रमाण है कि पुस्तकें अभी भी मानव सभ्यता के केंद्र में हैं। भारत से नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा वैश्विक पुस्तक मेलों में अपने साथ-साथ अन्य प्रमुख प्रकाशकों की पुस्तकों को प्रदर्शित किया जाता है। देश का प्रतिनिधित्व करते हुए नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया विश्व के सभी प्रमुख पुस्तक मेलों में शिरकत करता है।

बहुत से लोगों को लगता था कि डिजिटल तकनीक पुस्तक संस्कृति को कमजोर कर देगी, लेकिन हुआ इसका उलटा। ई-बुक्स और ऑडियो बुक्स के आने के बाद भी मुद्रित किताबों की बिक्री बढ़ी है और पुस्तक मेलों की लोकप्रियता पहले से भी अधिक बढ़ी है। इसका कारण है कि किताबें केवल पढ़ने की वस्तु नहीं होतीं, वे एक अनुभव होती हैं, पन्नों को छूने का अनुभव, उसकी खुशबू, किसी नए लेखक की दुनिया में प्रवेश करने का अनुभव। यह अनुभव डिजिटल माध्यम पूर्ण रूप से नहीं दे पाता। डिजिटल युग ने पुस्तक मेलों को और भी समृद्ध किया है। आज मेलों में डिजिटल पब्लिशिंग, कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद, ऑडियो प्रोडक्शन, कंटेंट राइट्स, ऑनलाइन स्टोरीटेलिंग जैसे नए आयामों को महत्व मिल रहा है।

भविष्य में पुस्तक मेलों की भूमिका और भी विस्तृत होने वाली है। वैश्विक संवाद बढ़ेगा, भाषाओं के बीच दीवारें गिरेंगी, अनुवाद नई पुलिया बनाएगा और दुनिया एक ऐसी जगह बनेगी, जहाँ ज्ञान का साझा मंच पुस्तकें होंगी। जब तक मनुष्य अपने अस्तित्व और ज्ञान की खोज करता रहेगा, पुस्तकें और पुस्तक मेले उसकी यात्रा का सबसे सुंदर, सबसे विश्वसनीय और सबसे प्रेरणादायक पड़ाव बने रहेंगे।

साहित्य के महायात्री रामदरश मिश्र

वर्तमान साहित्यिक परिवेश में ऐसा कोई विरला ही होगा, जैसे रामदरश मिश्र जी थे। एक सौ एक वर्ष से अधिक की लंबी यात्रा करने वाला यह अजातशत्रु, अनथक-अक्लांत महायात्री 31 अक्तूबर, 2025 की रात्रि यहाँ का जीवन एवं साहित्यिक यात्रा छोड़कर अनंत की यात्रा पर निकल गया और छोड़ गया अपने पीछे एक अनंत शून्य। जीवन के एक सौ एकवें वर्ष में 'पद्मश्री' से सम्मानित होने वाले मिश्र जी एक सौ एक वर्ष पूरा करके इस लोक को भले छोड़ गए, लेकिन उनका समृद्ध साहित्य, आत्मीयता और सरलता उनके आत्मीय लेखकों-पाठकों के हृदय में सदैव अक्षुण्ण रहेगा।

हरिशंकर राढ़ी

जन्म : 27 जून, 1964, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : एम.ए. (अंग्रेजी, संस्कृत), बी.एड.

संप्रति : सेवानिवृत्त अध्यापक एवं 'समकालीन अभिव्यक्ति' पत्रिका का सह संपादन

प्रकाशन : दो व्यंग्य-संग्रह, एक यात्रा संस्मरण, दो संपादित पुस्तकें, दो अंग्रेजी-हिंदी अनूदित पुस्तकें, देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में विभिन्न विधाओं की सैकड़ों रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9654030701

ई-मेल : hsrarhi@gmail.com

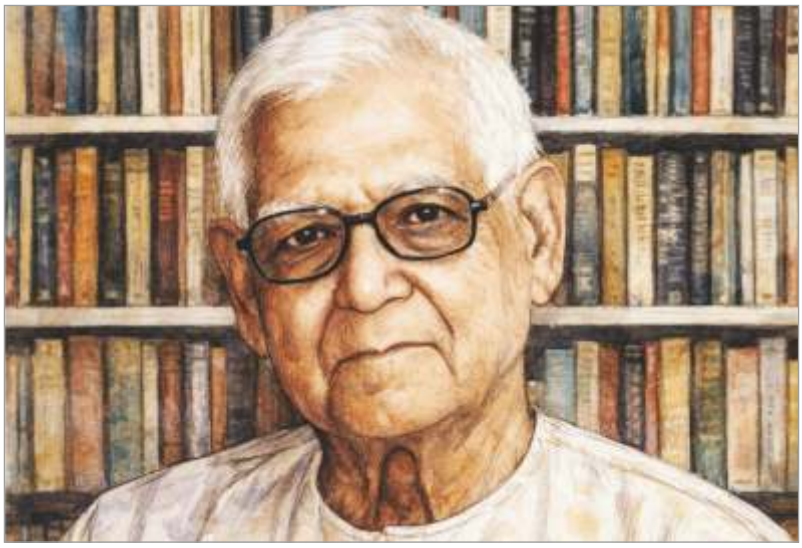

रामदरश मिश्र में कृतित्व एवं व्यक्तित्व का अद्भुत समन्वय था। ऐसे लोग सदियों में एकाध बार जन्म लेते हैं। सुदीर्घ जीवन एवं सुकृत्यों का जो संयोजन मिश्र जी के हिस्से में था, वह अन्यत्र दुर्लभ है। साहित्यिक खेमेवाद, राजनीति एवं उखाड़-पछाड़ के खेल से कोसों दूर प्रो. मिश्र जीवन के लगभग अंतिम दिनों तक सृजनरत रहे, जबकि वयजन्य दुर्बलता उन्हें लेखन की अनुमति नहीं दे रही थी। इस उम्र में लंबी रचनाएँ वश में नहीं थीं, इसलिए मुक्तक और ग़ज़लों पर उनकी लेखनी चलती रही। चाहे वह प्रतिष्ठित सम्मानों की बात हो या प्रसिद्धि की, धीरे-धीरे वे ऐसे मुकाम पर पहुँच गए, जहाँ पहुँचना हर साहित्यकार का स्वप्न होता है। ऐसी स्थिति में प्रो. मिश्र जी की गजल अक्षरशः सार्थक हो जाती है।

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा, मगर धीरे-धीरे।

15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर के सुदूरवर्ती कछार अंचल के डुमरी गाँव में जन्मे रामदरश मिश्र की जीवन-यात्रा बहुत कठिन रही। अभावों के उस युग में शिक्षा के लिए यहाँ-वहाँ भटकते वे बनारस पहुँचे, वहीं से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निकट रहते हुए हिंदी में पी-एच.डी. की और नौकरी की तलाश करते हुए गुजरात पहुँचे। वही गुजरात बाद में उनका 'दूसरा घर' बना, किंतु दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा। अंततः दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर बने और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। प्रो. मिश्र जी का उत्तर-जीवन जितना सृजनशील रहा, उतना कम लोगों का होता है। वरिष्ठ नागरिक बनने के बाद अधिकतर साहित्यकार लेखन बंद करके मंचों की अध्यक्षता करने लगते हैं, विमोचन-लोकार्पण तक सीमित हो जाते हैं या केवल पूर्वरचित साहित्य का विभिन्न नामों से संग्रह निकालने लगते हैं। किंतु

रामदरश मिश्र जी जीवन के उन अंतिम दिनों में भी सार्थक-सकारात्मक गीत-ग़ज़ल लिखते रहे, जब वे हिलने-डुलने में भी असमर्थ थे।

'मैं आषाढ़ का पहला बादल' जैसे गीतों की रचना करने वाले इस साहित्यिक बादल ने कविता, गीत, ग़ज़ल, उपन्यास, कथा, ललित निबंध, यात्रा-संस्मरण, संस्मरण, आत्मकथा, डायरी आदि विधाओं में पूरे जीवन बारिश की। आषाढ़ से शुरू हुई यह बारिश जाकर लगभग स्वाति में समाप्त हुई। जिससे जितना हो सका, इस बारिश में भीगा, गलगल हुआ और अब उस आसमान की ओर निहार रहा है, जिसमें यह बादल अदृश्य हो गया। इस यात्रा में बादल ने 'पथ के गीत' गाए, 'बारिश में भीगते बच्चे' जैसे दर्जनों काव्य-संग्रह देखे, 'पानी के प्राचीर' दिए तो 'जल टूटता हुआ' उपन्यास भी दिया। यह तो मात्र आषाढ़ का प्रारंभ था, इसके साहित्यिक फुहारों का विस्तार शतक तक गया।

साहित्य को लगभग सौ मूल कृतियाँ देने वाले मिश्र जी पर चर्चा होती है, तो पहली टिप्पणी आती है कि वे अजातशत्रु थे। कम-से-कम मुझे ऐसा कोई नहीं मिला, जिसके मुख से रामदरश मिश्र के लिए एक भी प्रतिकूल टिप्पणी निकली हो। मिश्र जी के पास बैठने का सौभाग्य मुझे खूब मिला है और वे मुझसे बहुत खुले हुए थे; तथापि मैंने उनसे किसी भी साहित्यकार-आलोचक के प्रति मनोमालिन्य का एक भी प्रसंग नहीं सुना। मिश्र जी ने अपने लिए जो भी जमीन तैयार की, वह उनकी अपनी थी। उसमें किसी साहित्यिक जमींदार का कोई योगदान नहीं था।

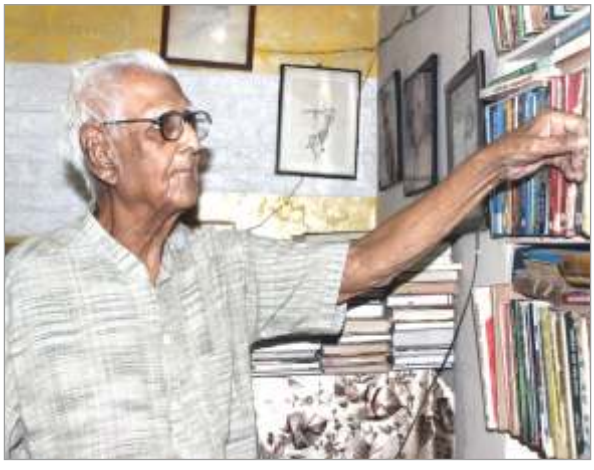

आत्मीयता की यात्रा चुपके-चुपके, निःशब्द होती है। मिश्र जी कब इतने आत्मीय हो गए, पता ही नहीं चला। वैसे, यह भी कहना ठीक नहीं होगा; आत्मीय तो वे पहली ही मुलाकात में हो गए थे। शायद बाद में गाढ़ापन बढ़ गया होगा। हाँ, यह कहना उचित होगा कि धीरे-धीरे उनसे इतना अपनापन मिला कि मेरे लिए उनका अस्तित्व, उनसे मिलना अपरिहार्य हो गया। यह कह दूँ कि जब मन में आया, मुँह उठाकर उनसे मिलने चल दिया तो गलत नहीं होगा या उनका जब मन हुआ, बुला लिया। 'समकालीन अभिव्यक्ति' का शायद ही कोई अंक हो, जिसे हाथ से देने के बजाय मैंने उन्हें डाक से भेजा हो, सिवाय कोरोना काल के। हाँ, उसी कोरोना काल में हमने

"वो भी क्या दिन थे! वाणी विहार के उनके बैठके में बैठक होती। मिश्र जी को सरदी ज्यादा लगती थी। सरदियों में जाता तो हीटर के पास बैठे होते थे। एक छोटी-सी मेज, कुरसी, मेज पर राइटिंग पैड या कुछ पन्ने, पन्नों में फँसी हुई कलम और उस पर उतरे हुए कुछ मुक्तक या कोई नई ग़ज़ल। पास में एक सिंगल बेड, साथ में लकड़ी का सोफा। इस मेज-कुरसी, कलम और कमरे पर उन्होंने मार्मिक कविताएँ लिखीं, जो 'आम के पत्ते' और 'आग की हँसी' कविता-संग्रहों में संगृहीत हैं। इन्हीं संग्रहों पर उन्हें क्रमशः 'व्यास सम्मान' और 'साहित्य अकादेमी' सम्मान मिले।"

'समकालीन अभिव्यक्ति' का मिश्र जी पर केंद्रित अंक निकाला। कोरोना काल में बिना मिले उन पर अंक निकालना दुष्कर हो रहा था। फोन पर बातचीत चलती रही और अंततः 120 पृष्ठों का वृहद् अंक जब छपकर आया तो मिश्र जी प्रफुल्लित हो उठे। कई लेखकों को हमने जोड़ा और मिश्र जी पर नये लेख लिखवाए। इस अंक पर डॉ. वेद मित्र शुक्ल की प्रतिक्रिया थी कि यह मिश्र जी पर निकले अंकों की प्रतिलिपि नहीं है।

वो भी क्या दिन थे! वाणी विहार के उनके बैठके में बैठक होती। मिश्र जी को सरदी ज्यादा लगती थी। सरदियों में जाता तो हीटर के पास बैठे होते थे। एक छोटी-सी मेज, कुरसी, मेज पर राइटिंग पैड या कुछ पन्ने, पन्नों में फँसी हुई कलम और उस पर उतरे हुए कुछ मुक्तक या कोई नई ग़ज़ल। पास में एक सिंगल बेड, साथ में लकड़ी का सोफा। इस मेज-कुरसी, कलम और कमरे पर उन्होंने मार्मिक कविताएँ लिखीं, जो 'आम के पत्ते' और 'आग की हँसी' कविता-संग्रहों में संगृहीत हैं। इन्हीं संग्रहों पर उन्हें क्रमशः 'व्यास सम्मान' और 'साहित्य अकादेमी' सम्मान मिले।

हमने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को नहीं देखा है, किंतु वाणी विहार के उस आवास में सोफे पर बैठे कविता बाँचते-सुनते, लोहे के छोटे गेट पर खड़े किसी आगंतुक की प्रतीक्षा करते, आचार्य जी के संस्मरण सुनाते मिश्र जी को देखते थे, तो लगता है कि हम आचार्य द्विवेदी के सामने ही बैठे हैं। दरअसल, मिश्र जी से आचार्य जी के बारे में जो संस्मरण सुनते, वही प्रतिबिंब हमें मिश्र जी में भी मिलता। जैसे कभी आचार्य जी, मिश्र जी की 'कुंतल जाल' वाली पुरवइया सुनकर सिर हिला रहे थे, वैसे ही मिश्र जी हम सबकी कविताएँ सुनकर झूमते थे। कविता कैसी भी हो, मिश्र जी का समर्थन

पाकर वह गंभीर हो जाती थी। बीच-बीच में ठाकुर प्रसाद सिंह या किसी अन्य का कोई संस्मरण सुनाते तो ठहाके लगते।

अब जब मिश्र जी नहीं रहे तो क्या-क्या याद करूँ और क्या भूलूँ? उनका स्नेह, उनकी सीखें, उनकी जिजीविषा, उनका साख्यभाव और उनकी शिष्टता! याद आता है 2014 का साल, जब उनके पुत्र हेमंत का असमय निधन हो गया था। मैं और उपेंद्र जी जब बिना सूचित किए पहुँचे तो वे निर्लिप्त, स्थितप्रज्ञ-से बैठे थे। उस दुख को उन्होंने हम पर हावी नहीं होने दिया। खुद कितने भी दुखी रहे हों हमें सामान्य बातों में लगाया और डायरी का वह पन्ना ढूँढ़कर लाए, जो मेरे ऊपर लिखा था। क्या कहता मैं! उस मूल पाठ को लेकर किसी गली में फोटोकॉपी कराया और एक अमूल्य धरोहर के रूप में रख लिया। ऐसी विषम परिस्थितियों में स्वयं को सँभालना और वातावरण को सहज बनाना सरल नहीं होता, किंतु मिश्र जी में वह अद्‌भुत साहित्यकार अंदर तक समाया हुआ था, जो अपने पाठकों को जीवन में अपने लेखन से सकारात्मकता की सीख देता है।

वास्तव में, मिश्र जी का साहित्यिक और व्यक्तिगत अस्तित्व किसी वटवृक्ष से कम नहीं था, जिसके ढह जाने पर आसमान का एक बड़ा क्षेत्रफल खाली हो गया है। प्रारंभिक किशोरावस्था में एक कवि के रूप में साहित्यिक यात्रा शुरू करने वाले मिश्र जी साहित्य-सृजन का इतना लंबा आकाश नाप लेंगे, यह किसे पता था? 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' से आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए मिश्र जी ने अनेक विधाओं में शताधिक पुस्तकें दीं, जो हिंदी साहित्य के लिए अमूल्य हैं। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'दूसरा घर' जैसे अद्‌भुत उपन्यास उनके कथा-शिल्प एवं सामाजिक सोच को बखूबी बयाँ करते हैं। एक समय था कि 'पानी के प्राचीर' को आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखकर कुछ विशेष विचारधारा के गिरोहों एवं आलोचकों द्वारा अवमूल्यन करने का असफल प्रयास किया गया, किंतु यदि शिल्प, कथानक और ग्रामीण भारत की वास्तविक झलक देखनी हो तो इन उपन्यासों को उपेक्षित किया ही नहीं जा सकता है।

यह निर्णय कर पाना लगभग असंभव है कि मिश्र जी का कवि रूप बड़ा है या गद्यकार रूप। कहानी, ललित निबंध, आलोचना, यात्रा-संस्मरण, संस्मरण, डायरी जैसी सभी विधाओं में मिश्र जी ने खूब लिखा और उच्च स्तरीय लिखा। गीतों में मिश्र जी की गति प्रारंभ से ही उत्तम थी, लेकिन बाद में जब वे ग़ज़ल में उतरे तो एक से बढ़कर एक ग़ज़ल लिखी। उनके कई ग़ज़ल-संग्रह आए। मिश्र जी अपनी ग़ज़लों के विषय में कहते थे कि उनकी गज़लों में कहन का चमत्कार नहीं है, अपितु सहज अभिव्यक्ति है, जो जन और मन की बात करती है। 'आज धरती पर झुका आकाश' शीर्षक से उनका ग़ज़ल समग्र भी आ चुका है।

आज हिंदी साहित्य में किसी साहित्यकार को मिले पुरस्कार और सम्मान प्रायः उसका कद नापने का मानक बन चुका है, जिससे इन्हें हथियाने और अपनों में बाँटने का चलन जोर-शोर से है। मिश्र जी को साहित्य के लगभग सभी बड़े पुरस्कार मिले, किंतु अधिकतर जीवन के दशवें दशक में मिले। इस देरी को लेकर प्रश्न खड़े होते रहे, क्योंकि मिश्र जी को किसी प्रभावी 'वाद' या 'पंथ' से लगाव नहीं था और ऐसी मानसिकता के लोग उन्हें भरसक किनारे लगाते रहे। मिश्र जी को इनसे शिकायत नहीं रही। जब उन्हें साहित्य अकादेमी सम्मान 92 वर्ष की आयु में मिला तो ऐसा लगा कि अब जाकर इस सम्मान के साथ न्याय हुआ है। 'व्यास सम्मान', 'सरस्वती सम्मान', 'कबीर सम्मान' और अंततः पद्‌मश्री सम्मान भी उनके हिस्से में आए, भले ही देर से आए हों।

प्रो. रामदरश मिश्र को वसंत से बहुत प्यार था और वे पूरे एक सौ एक वसंत देखकर महायात्रा पर निकल गए। हमारे बीच उनके साहित्य का वसंत हमेशा रहेगा, किंतु मिश्र जी नहीं रहे। विश्वास-सा नहीं होता कि वे नहीं रहे, लेकिन यही यथार्थ है। शायद ही कोई दिन रहा होगा जब उनके वाणी विहार के 'सरस्वतीयं' में उनके सान्निध्य में किसी-न-किसी परिचित-अपरिचित ने साहित्य और स्नेह का लाभ न लिया हो। जीवन के लगभग अंतिम दो वर्ष मिश्र जी ने द्वारका में पुत्र शशांक मिश्र जी के साथ बिताया। वहाँ भी उनके चाहने वालों का आना-जाना वैसे ही लगा रहता था, यद्यपि वे आयु के दौर्बल्य से गुजर रहे थे। मेरे जैसे न जाने कितने होंगे, जिन्हें उनका चला जाना व्यक्तिगत स्तर पर बहुत बड़ी क्षति लग रहा होगा।

यह मिश्र जी की जिजीविषा एवं स्थितप्रज्ञता के साथ कर्म में संलिप्तता थी, जिसने उन्हें 'जीवेम शरदः शतम्' को साकार ही नहीं करने दिया, अपितु सबको अपना बनाकर रखा। उनकी जिजीविषा की बात चले तो बहुत-सी पंक्तियाँ आकर खड़ी हो जाती हैं। किसे उद्‌धृत करूँ, किसे छोड़ूँ? को बड़ छोट कहत अपराधू! फिर भी, यह पंक्ति तो बहुत ही प्रासंगिक है—

रहूँगा मैं, न मेरे कहकहे, न दिन, फिर भी
मिलेगा दर्द में मेरा निशाँ, कहीं-न-कहीं।

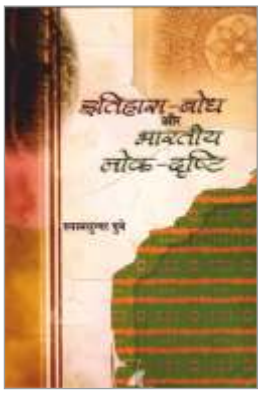

इतिहास बोध और भारतीय लोक-दृष्टि

समीक्षक : **जयकृष्ण पलया**

लेखक : **श्यामसुंदर दुबे**

प्रकाशक : नेशनल पब्लिकेशंस, चौड़ा रास्ता, जयपुर, राजस्थान-302003

पृष्ठ : 173

मूल्य : रु. 495/-

जब हम लोक की बात करते हैं तो अपनी ही बात करते हैं। लोक हमारे भीतर स्पंदित होने वाला एक ऐसा भाव है, जिससे हम मुक्त नहीं हो सकते, इसलिए लोक कहीं-ना-कहीं हमारी स्मृति में इस तरह गतिमान होता है कि हमसे भुलाए नहीं भूलता। हम लोक के माध्यम से स्वयं को ही व्यक्त करना चाहते हैं। यही हमारे लोक का सौंदर्य है। लोक की यह गतिशीलता ही उसे सुंदर बनाती है। इतिहास का बोध तो एक स्थिर बोध है। जो कभी नहीं बदलता, एक जगह रुका हुआ है और रुका हुआ पानी सड़ता रहता है। इसलिए प्रकृति के बाद अगर सबसे सुंदर कुछ है, तो वह लोक है। प्रकृति भी स्थिर नहीं रहती और लोक भी स्थिर नहीं रहता। प्रकृति अपने आपको निरंतर रचती रहती है, अपने आपको बनाती रहती है। लोक भी अपने को रचना जानता है और लोक का यह नयापन ही सबको खींचता है, अपनी तरफ आकर्षित करता है। चाहे वह संगीत हो, नृत्य हो, चित्रकला हो, लोक ही इस त्रिवेणी के अंतस में हमेशा सरस्वती की तरह सदा बहता रहता है। इसलिए अगर लोक को स्पष्ट रूप में समझना है, तो इतिहास के बोध के साथ ही समझना पड़ेगा। पानी की गतिशीलता किनारे के ठहराव के कारण दिखाई पड़ती है। अगर पानी के साथ किनारे भी बहने लगे तो पानी की गतिशीलता को हम नहीं समझ सकते। इतिहास वह किनारा है, जिससे सटकर लोक का पानी हमेशा बहता रहता है। अपनी सारी अशुद्धियों को किनारे लगाकर अपने आपको शुद्ध करता रहता है।

यह पुस्तक अपनी परंपरा, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपनी स्मृति और इन स्मृतियों में नदी-नाले, खेत-खलिहान, वृक्ष सबकी बात करती है। यह लोक के द्वारा पीछे लौटना है। अपने को खोजना है। यही लोक की व्यापकता है, जिसकी स्मृतियों के पानी में हम स्वयं को प्रतिबिंबित होते हुए देखते हैं।

यह पुस्तक एक अध्ययन एक अन्वेषण है, जिससे हमारे गुणसूत्र की पहचान होती है। इसमें प्रकृति में नदियों के लिए लिए, पशु-पक्षियों के लिए भी एक आस्था का भाव है। देवदार के उर्जानामी वृक्ष के साथ धरती पर बिछी उस हरी दूब की भी चिंता है, जिसे पाश्चात्य संस्कृति के पाँव तले दबाकर रौंदा जा रहा है। इसलिए लोक अभिक्रियाओं को बचाना लोक को बचाना है, बल्कि यह कहें कि उन्हें पुनर्जीवित करना है। इससे हम भी पुनर्जीवित होते हैं।

यह पुस्तक लोक के उस सौंदर्यबोध की बात करती है, जो एक समूह का सौंदर्यबोध था और समूह का सौंदर्यबोध ही प्रकृति का सौंदर्यबोध था। जिसमें सारे रूप मिलकर एक स्वरूप में व्यक्त होते थे। जब अहंकार और अधिकार का बोध प्रबल हुआ, हमने पहली बार समूह के इस सौंदर्यबोध को भी इनकार किया, हम एक ऐसी खला में उतरना चाहते थे, जहाँ से फिर वापस लौटना हमारे लिए संभव नहीं था। हम ऐसी एकाकी शहरी संस्कृति से प्रभावित हो रहे थे, जिसके अतिक्रमण से हमारे परिवार टूट रहे थे और यह अतिक्रमण एक ऐसा प्रहार था, जिसकी चिंता हम सबको करनी थी।

यह पुस्तक परिवार के गिरते हुए मूल्य को बचाने के लिए और प्रकृति के शाश्वत सौंदर्यबोध को फिर से जीवित करने के लिए एक गहरे चिंतन का अभिप्राय-समन्वय है। जिसमें इतिहास बोध और लोक चिंतन को एक नई दृष्टि के साथ अभिव्यक्त किया गया है। पढ़ते हुए एक अभिप्राय भिन्न होने के बाद भी एक ही रूप में व्यक्त होते हैं। यही दृष्टि तो लोक के पास है। लोक कोई भेद नहीं करता। उसके पास भी एक समग्र दृष्टि है, जिसमें सारे बिंब एक समांतर धरातल पर खड़े हुए प्रतीत होते हैं। यह लोक का एक समांतर भाव है, जिसमें कोई भेद नहीं। यह लोक की एक वृत्ताकार दृष्टि है, जिसमें सीमा का कोई बंधन नहीं, सर्वसमावेशी भाव है, एकात्म भाव है, जो समय की स्थानीयता के वैभिन्य को लेकर चलने वाला भाव है।

आदिम मनुष्य ने जब सभ्यता के पहले चरण में प्रवेश किया होगा, तो उसने अपने संस्कारी रीति-रिवाजों में प्रकृति को किस तरह समावेशित किया होगा, यह लोक संस्कृति को देखने पर अनुभव होता है। जब पहली बार विवाह में दूल्हे को सजाया होगा, तो सिर पर बाँधने वाला मौर भी प्रकृति से आया होगा। जब मिट्टी को साक्षी मानकर हमने उसे मंडप में स्थापित किया होगा, उसी से अपने देव गढ़े होंगे, फिर देव भी उसी जल में विसर्जित कर दिए होंगे। यही लोक का अनवरत चलने वाला सिलसिला है, जो हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में समाया हुआ है। यही लोक की व्यापकता है, जो इस पुस्तक के माध्यम से व्यक्त होती है।

इस पुस्तक की भाषा सहज और सरल है। लोक में रुचि रखने वाले तथा लोक पर अनुसंधान करने वाले पाठकों के लिए यह महत्वपूर्ण कृति है।

एक स्त्री का उदास सफर

समीक्षक : **डॉ. शकुंतला कालरा**

संपादन : **प्रकाश मनु**

प्रकाशक : लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 250/-

हिंदी कहानी के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाने वाले प्रकाश मनु जी का नवीनतम कहानी-संग्रह है—'एक स्त्री का उदास सफर'। इस संग्रह की कहानियों में उनके भोगे हुए अनुभव हैं। पुस्तक में कुल नौ कहानियाँ हैं—'आप कहाँ हैं जित्ते सर', 'सुकरात मेरे शहर में', 'अरुंधती उदास है', 'तुम भी एक कहानी बन गए नंदू भैया', 'एक स्त्री का उदास सफर', 'अथ कला-ड्रामा', 'लावनी की आँखें', 'भटकती जिंदगी का नाटक' और 'नंदू भैया का कंदील'। इनमें हर कहानी की अपनी एक अलग दुनिया है। अपना रंग, अपना मिजाज।

संग्रह की कहानी 'आप कहाँ हैं, जित्ते सर' इनमें सबसे अलग है। प्रकाश मनु की यह अत्यंत चर्चित कहानी है, जिसके कथानायक जित्ते सर लेखक के कॉलेज के हिंदी के प्रोफेसर हैं। उनमें खुद्दारी है और एक अलग-सी दीवानगी भी। इसलिए उनके कॉलेज में आने पर हिंदी विभाग जो हाशिए पर था, अच्छा-खासा दिखने लगा। सारे विद्यार्थी उनके मुरीद हैं, और उन पर जान छिड़कते हैं। पर कॉलेज में राजनीति के फलस्वरूप तीसरे साल ही उन्हें कॉलेज छोड़कर जाना पड़ा। इस बीच उन्हें गले का कैंसर हो गया, लेकिन लंबे इलाज और कीमोथेरेपी से कुछ फायदा हुआ और उन्होंने अपना आत्मकथात्मक उपन्यास 'हीरेन बाबू की अजीब दास्तान' पूरा किया। मनु जी ने जित्ते सर के रूप में एक लेखक की त्रासदी को उभारा है कि कैसे अपनी असाधारण योग्यता के बावजूद उसे राजनीति का शिकार होना पड़ता है।

संग्रह की एक और मार्मिक कहानी है 'लावनी की आँखें'। इसकी कथानायिका किशोरवय की लावनी है। बचपन में उसकी आँखों की रोशनी चली गई थी। इसलिए वह बहुत उदास रहती है। हालाँकि, वह बहुत सुंदर भजन गाती है। फिर एक दिन बेलापुर में संगीत की दुनिया के महान गुरु राघवाचार्य जी आते हैं। उनके स्कूल की संगीत शिक्षा ने लावनी के स्वर को निखारा।

इसी तरह, संग्रह की एक भावनात्मक कहानी है, 'भटकती जिंदगी का नाटक'। इसके कथानायक लेखक और समाज-सुधारक वसंतदेव जी हैं। बचपन में वे बहुत शरारती थे। कहानीकार ने बचपन के ऊधमी लड़के का सुप्रसिद्ध साहित्यकार वसंतदेव के रूप में रूपांतरण बड़े मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है।

संग्रह की शीर्षक कथा 'एक स्त्री का उदास सफर' की कथानायिका लतिका है, जिसका जीवन उदासी से भरा हुआ है। कहानी में उसकी जीवन-यात्रा में आई चुनौतियों, दुख, उदासी अकेलेपन और तकलीफों की मार्मिक दास्तान है, जो पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ती है।

संग्रह की शेष कहानियाँ 'सुकरात मेरे शहर में', 'अरुंधती उदास है', 'तुम भी एक कहानी बन गए नंदू भैया' और 'अथ कला-ड्रामा' भी पाठकों के मन में गहरे तक उतर जाती हैं। ये कहानियाँ पाठकों को रास्ता दिखाती हैं, पर किसी गाइड की तरह नहीं, वरन् मित्रवत् हाथ थामकर अपने साथ आगे ले चलती हैं। सच पूछिए तो मनु जी व्यापक समाज-बोध के कथाकार हैं, जिसका परिचय उनकी अधिकांश कहानियाँ देती हैं। इन कहानियों के पात्र मनु जी की स्मृतियों से होते हुए उनकी कहानियों में पुनर्जीवित हो उठे हैं। इनमें उनका मन, संवेदना और मनोविज्ञान है। भीतर की कसक और जीवन का यथार्थ है। उनके संघर्ष का मार्मिक चित्रण है। पात्रों का चरित्रांकन कहानीकार ने इतनी खूबसूरती के साथ किया है कि वे पाठकों के मन पर देर तक दस्तक देते रहेंगे। कथ्य की भाँति इन कहानियों का शिल्प भी बेजोड़ है। पाठकों को ये कहानियाँ आनंद और संतोष प्रदान करेंगी।

कुल मिलाकर, 'एक स्त्री का उदास सफर' कहानी-संग्रह लेखक के जीवन-अनुभवों का प्रामाणिक दस्तावेज है। जीवन में आए पात्र, उनसे जुड़ी छोटी-बड़ी घटनाओं का संवेदनशील शैली में प्रस्तुतीकरण प्रकाश मनु के कहानीकार की विशेषता है। सभी कहानियाँ अपने आप में पूर्ण हैं तथा उनका कथानक अत्यंत सशक्त एवं सजीव है।

मनु जी की कहानियों से गुजरते हुए पाठक को लगता है कि वह स्वयं इन परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है। कहानीकार में कथ्य और तथ्य के साथ भरपूर संवेदना जगाने की अद्भुत क्षमता है। सभी कहानियों की भाषा सहज और सीधी-सरल है। मनु जी विशिष्ट कवि और कथाकार हैं, इसलिए इन कहानियों की भाषा में एक सहज काव्यात्मक प्रवाह है, जो इन कहानियों में एक अलग प्रभाव पैदा करता है।

अंत में, मैं कहना चाहूँगी कि ये कहानियाँ हमें अनुभव के नए संसार में ले जाती हैं। इनमें कथा-तत्व के साथ ही संस्मरण, कविता, जीवनी, आत्मकथा आदि विधाओं का स्पर्श भी आपको सहज रूप से मिल जाएगा। इसलिए एक विधा में होकर भी लेखक पाठकों को एक बहुविध दुनिया में ले जाता है। यही इन कहानियों की खूबसूरती है। मनु जी की कथा-शैली इस बात की पुष्टि करती है कि उनके पास एक जादू-भरी भाषा है, जो पाठकों के दिल में उतर जाती है। इसीलिए ये कहानियाँ इतनी अलग और अनूठी हैं।

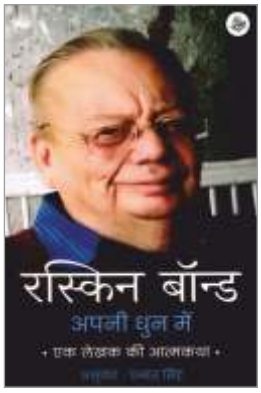

समीक्षक : **मुमताज़ इक़बाल**

लेखक : **रस्किन बॉन्ड**

अनुवाद : **प्रभात सिंह**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृष्ठ : 326

मूल्य : रु. 499/-

अपनी धुन में

‘अपनी धुन में’ एक प्रतिष्ठित लेखक रस्किन बॉन्ड की आत्मकथा है, जिसे राजकमल प्रकाशन ने 2025 में प्रभात सिंह के द्वारा किये गए हिंदी अनुवाद के रूप में प्रकाशित किया है। यह दिलचस्प संस्मरणों से भरी आत्मकथा है, जिसे उन्होंने मूल रूप से अंग्रेजी में ‘LONE FOX DANCING : My Autobiography’ शीर्षक से लिखा और जिसे Speaking Tiger द्वारा वर्ष 2017 में प्रकाशित किया गया था। यह किताब एक लेखक के आजीवन लिखते रहने की उस प्रतिबद्धता का जीवंत प्रमाण है, जिसमें उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देना था, और उन्होंने यही किया। उन्होंने लिखा, बचपन से, युवावस्था में और अभी तक, जबकि उनकी आयु 90 वर्ष से अधिक हो चुकी है, और वह 67 वर्षों से लगातार लिख रहे हैं, उनके पाठकों के लिए उनकी इस साहित्यिक जीवन-यात्रा में कैसे-कैसे पड़ाव आते रहे हैं, यह जानना बहुत ही दिलचस्प और रोमांचकारी अनुभव देने वाला है।

आशा, प्रेम और पागलपन, यही वे तीन शब्द हैं, जिन्हें रस्किन बॉन्ड ने अपने लिखने के लिए एक मूलमंत्र के रूप में चुन लिया था और फिर उन्होंने कहानियाँ लिखीं, उपन्यास लिखे और कथेतर भी लिखा। लिखते चले गए।

यह आत्मकथा एक शैतान, जिद्दी और बुलंद हौसले वाले लड़के की बचपन से युवा और फिर बूढ़े होने तक की दास्तान है, जिसमें हमें ब्रिटिशकालीन भारत से आजाद हिंदुस्तान तक, बहुत सारे मजेदार किस्सों से भरी जिंदगी मिलती है। यह जिंदगी उसके रॉयल एयर फोर्स में ऑफिसर पिता, एक बच्चे के अपने पिता के प्रति सघन प्रेम, बाप-बेटे के रिश्ते से जन्म लेने वाली चीजों, जैसे—डाक टिकट, कॉमिक्स और सिनेमा की कहानियों, उन्मुक्त और आजाद खयाल माँ, माता-पिता के कभी भी खत्म न होने वाले झगड़ों, सगे और सौतेले भाई-बहनों वाले परिवार, संबंधियों और दोस्तों की कहानी भी सुनाती है। जामनगर, देहरा (देहरादून), कसौली, लंढौर, शिमला, लंदन और दिल्ली जैसी जगहों और शहरों का विवरण और उस समय की भौगोलिक स्थितियों, प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों और भारत की स्वतंत्रता संबंधी ऐतिहासिक बातों को भी हमारे सामने रखती है।

यह आत्मकथा एक ऐसे नौजवान की कहानी भी है, जिसे सीनियर कैंब्रिज का सर्टिफिकेट भी मिला, मगर जिसके अनुसार उसकी बाकी की तालीम पुराने पुस्तकालयों और पुरानी किताबों की दुकानों में ही पूरी हुई। और जब उसकी माँ ने उससे भविष्य की योजनाओं के बारे में सवाल किया तो उसका जवाब था, “हाँ, मैं एक लेखक बनना चाहता हूँ।” एक ऐसा विद्रोही नौजवान लेखक, जिसने अपने लिखने के कमरे को हासिल करने के लिए घर छोड़ा, शेक्सपियर और डिकेंस के महँगे संस्करण अपने दोस्त की मदद से बेचे और थक-हारकर उसे एक कमरा मिला। जिसे लिखने के लिए एक किराना स्टोर पर जूनियर क्लर्क और ट्रैवल एजेंसी में असिस्टेंट की नौकरी तक करना पड़ी और जिसे नौकरी से निकाला भी गया। एक ऐसा नौजवान, जिसने एक आयरिश महिला के द्वारा कहे गए एक वाक्य, ‘तुम्हारी कभी शादी नहीं होगी’ के हूबहू अपने जीवन को बिना शादी के गुजार दिया। उन्होंने जितने प्रेम किए—एकतरफा और साझे। उनका जिक्र अपनी कुछ कहानियों में भी किया है और कुछ बहुत निजी बातों को उन्होंने कभी भी कहीं भी नहीं लिखा। और उन स्त्रियों के बारे में केवल कल्पना ही एक पाठक के पास रह जाती है। एक अनुभवपूर्ण जीवन का एक बहुत ही सरस बयान है यह आत्मकथा।

यह आत्मकथा केवल उनके लेखन के बारे में सुंदर, रोमांचकारी और अच्छी यादों से आरास्ता नहीं है, बल्कि एक लेखक कब अपनी किसी कहानी के कारण अश्लीलता के आरोप में किसी किस्म की मुकदमेबाजी का शिकार हो जाता है, इस षड्यंत्र को भी प्रस्तुत करती है। कारण चाहे जो भी रहे हों और राज चाहे कभी न भी खुल सके हों। वह बताते हैं कि किस तरह उन्हें थाने जाना पड़ा और फिर उनके दोस्तों और लेखकों ने उनकी मदद की, कवि निसिम एज़कील और विजय तेंदुलकर, जिन्होंने रस्किन के पक्ष में गवाही दी। लेकिन आप जानकर हैरान होंगे कि प्रसिद्ध भारतीय अंग्रेजी लेखक खुशवंत सिंह ने ऐसा नहीं किया और उन्होंने मना कर दिया। यह घटना आपातकाल के समय की है और मुकदमा खत्म होने तक आपातकाल भी खत्म हो गया था।

यह एक महत्वपूर्ण, दिलचस्प, जरूरी और अपने समय के प्रसिद्ध लेखकों में शुमार साहित्यिक की आत्मकथा है, जिसे हम सबकी बुक शेल्फ का हिस्सा होना चाहिए।

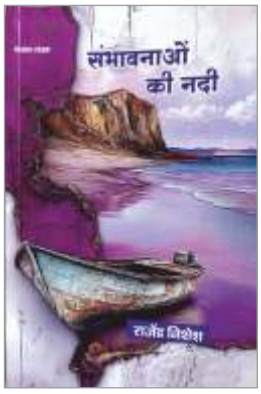

समीक्षक : **डॉ. वेद मित्र शुक्ल**
ग़ज़लकार : **राजेंद्र निशेश**
प्रकाशक : वनिका पब्लिकेशंस, विष्णु गार्डन, नई दिल्ली-110018
पृष्ठ : 100
मूल्य : रु. 220/-

संभावनाओं की नदी

(ग़ज़ल-संग्रह)

वरिष्ठ साहित्यकार राजेंद्र निशेश द्वारा रचित ग़ज़ल-संग्रह 'संभावनाओं की नदी' में 87 ग़ज़लें संकलित हैं। इन ग़ज़लों के शेरों में तितली, जुगनू आदि से जुड़े रूपक बार-बार आते हैं। ये जहाँ एक ओर इंसानियत के कई खूबसूरत आयामों को उजागर करने को आते हैं, तो वहीं दूसरी ओर गिरगिट जैसे रूपक भी आज के आदमी का आईना दिखलाने के लिए आते हैं। ग़ज़लकार अपनी कहन को राम-कृष्ण और सुदामा के संदर्भों से जहाँ एक ओर समृद्ध कर रहे होते हैं, तो वहीं दूसरी ओर सुकरात और तुगलक के उदाहरण देते हुए विकास के लिए रेल की पटरी के किनारे उजाड़े जा रहे घरों तक भी पहुँच रहे होते हैं। एक बड़े फलक पर अपनी ग़ज़ल कहने वाले राजेंद्र जी आज की जिंदगी को जीते हुए कई विधाओं में सर्जनारत हैं। व्यंग्य विधा में कई किताबें लिख चुके निशेश जी की ग़ज़लों में व्यंग्यात्मकता भी भरपूर है।

अपने ग़ज़ल-संग्रह की भूमिका लिखते हुए ग़ज़लकार निशेश जो चिंता व्यक्त करते हैं, वह कुछ इस प्रकार से है, "'संभावनाओं की नदी' मेरा दूसरा ग़ज़ल-संग्रह है। आज का समय वास्तव में अंतर्विरोधों से भरा है। वास्तव में, आज हमारा समाज उपभोक्तावादी अपसंस्कृति एवं भूमंडलीकरण के दोराहे पर किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा है। मानव-मूल्यों के पतन तथा व्यक्तियों के दोगले आचरण ने उसकी अंतर्विरोधी सोच की कलई को खोल दिया है और भ्रष्टाचार, क्रूरता, सामाजिक उत्पीड़न, शोषण, अवसाद आदि हमारे जीवन के अंग बन चुके हैं। बदलाव जीवन का नियम है, लेकिन समय के साथ-साथ हम नैतिक पतन के रसातल तक पहुँच जाएँगे, शायद किसी ने कल्पना तक नहीं की थी।"

इस संग्रह की लगभग सभी ग़ज़लों में इन चिंताओं की अभिव्यक्ति से बढ़कर जो इसकी उपलब्धि है वह यह कि ग़ज़लकार की भाषा-शैली और भाव का प्रभाव आशा के दामन को पाठक से छूटने नहीं देता है। निशेश जी का मानना है, "संभावनाओं की नदी कभी भी, कहीं भी अपनी राह बना सकती है।" किताब की पहली ग़ज़ल के मतले को इसी सोच में ढालकर ग़ज़लकार कहते हैं—

संभावनाओं की कोई नदी बहती तो होगी/ नन्ही चिड़िया छत पर आज भी आती तो होगी।/ चलते हुए पाँवों को अकसर छाले ही मिले हैं/ कभी मखमली हाथ को छुअन सहलाती तो होगी।

संभावनाओं की डोर थामकर ग़ज़ल कह रहे कवि निशेश आदर्शवाद के मायाजाल में नहीं उलझते हैं। यथार्थ की जमीन पर दिन हो या रात, वह असल उजियारे की संभावनाओं से दो-चार होते दिखते हैं। ग़ज़ल-संग्रह के शेरों में आज के सामाजिक एवं नैतिक यथार्थ की गहरी पड़ताल भी की गई है। संग्रह की रचनाएँ भीतर बसे असमंजस, गिरते मानवीय मूल्यों और सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालती हैं, जिनका सामना आज का मनुष्य कर रहा है। कवि ने वर्तमान समय को अंतर्विरोधों से भरा बताया है, जहाँ भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद और नैतिक पतन जैसे तत्व मिलकर एक नए प्रकार की सामाजिक विसंगति को जन्म दे रहे हैं।

एक अन्य ग़ज़ल में निशेश जी ने सामाजिक-आर्थिक विषमताओं और पर्यावरणीय संकट को बखूबी दर्शाया है। औद्योगीकरण और शहरीकरण के नाम पर जो विकास हो रहा है, उसने गरीबों की जिंदगी को और भी अधिक पीड़ादायी बना दिया है। यह उत्पीड़न और शोषण सामाजिक संकट की एक प्रतिध्वनि है। इसी ग़ज़ल में वह पंक्ति भी है, जो ग़रीबी, विस्थापन और वर्गभेद की गहरी मार्मिकता को प्रस्तुत करती है। विकास की रेल तो दौड़ रही है, किंतु सड़क किनारे झुग्गियों में रहने वाले आज भी बुनियादी जरूरतों के लिए तरस रहे हैं। यह उपभोक्तावादी समाज की संवेदनहीनता का ही प्रतीक है। इसी कड़ी में कई और ग़ज़लों को भी पढ़ा जा सकता है, जहाँ व्यक्ति के बदलते व्यवहार को दर्शाया गया है। जहाँ इंसान को अब नैतिक मूल्यों की बजाय दुनियादारी और चालाकी सीखना पड़ रहा है। यही वह 'नैतिक पतन' है, जिसकी बात निशेश जी ने संग्रह की भूमिका में की है।

कुल मिलाकर, हम कह सकते हैं कि इस संग्रह की रचनाएँ मात्र यथार्थ की तस्वीर नहीं प्रस्तुत करती हैं, बल्कि वे उस कशमकश को भी सामने लाती हैं, जो एक संवेदनशील व्यक्ति को महसूस होती है। इस संकलन के माध्यम से ग़ज़लकार बताना चाहता है कि हम बदलाव को केवल बाहरी न रखें, अपितु आत्ममूल्यांकन और संवेदनशीलता से भरपूर भी बनाएँ। यह ग़ज़ल-संग्रह आज के उस समय की करुण पुकार है, जिसमें जीवन की तलाश, सामाजिक न्याय और आत्मिक शांति एक जटिल संघर्ष बन चुके हैं।

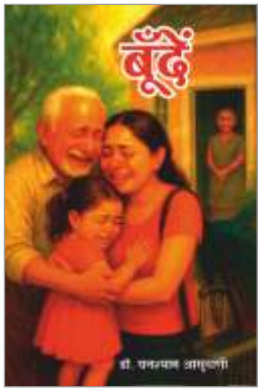

समीक्षक : **भगवान अटलानी**

लेखक : **डॉ. घनश्याम आसूदाणी**

प्रकाशक : साहित्यागार, जयपुर, राजस्थान-302003

पृष्ठ : 134

मूल्य : रु. 250/-

बूँदें

प्रोफेसर डॉ. घनश्याम आसूदाणी जन्मांध होते हुए भी पी-एच.डी. करके महाराष्ट्र के एक कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं। उनकी यह सातवीं पुस्तक 'बूँदें' अलग फलक पर खड़ी नजर आती है। वे प्रमुखतः कहानियाँ और लघुकथाएँ लिखते हैं। 'बूँदें' उनकी लघुकथाओं का पहला संग्रह है।

'बूँदें' की भूमिका में आसूदाणी लिखते हैं, 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि साहित्य वेदना से भी अधिक संवेदना की उपज है।' उनकी लघुकथाओं में इस बीज वक्तव्य को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं, 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान'। निश्चय ही उनका आशय वियोगजनित पीड़ा, वेदना और उससे उपजी संवेदना को साहित्य की उत्पत्ति से संलग्न करना रहा होगा। क्रौंच वध के प्रकरण को महर्षि वाल्मीकि की संवेदना के उत्स के रूप में देखा जाता है। आसूदाणी जब वेदना को संवेदना से जोड़कर साहित्य-सृजन की बात कहते हैं, तो प्रकारांतर से वे सुमित्रानंदन पंत को ही दोहरा रहे होते हैं।

संग्रह में शामिल 'दर्द', 'घर की खुशबू', 'हा हा हा', 'पड़ोस का रिश्ता', 'सफेद छड़ी की आवाज', 'भगत की रात', 'कहानी की कहानी' और 'मीठा पान' संवेदना को उद्घाटित करने वाली लघुकथाएँ हैं। इसी तरह, कई लघुकथाओं में दर्द के मुकाबले संवेदना को उच्च स्तर पर लक्षित किया जा सकता है। इनमें से प्रमुख हैं, 'पार्टीशन', 'संस्कृति', 'ठिठुरे आँसू', 'विशेष अतिथि', 'भीतर वाला मैं', 'मेहमान नवाजी', 'आँसुओं की गरिमा', 'प्रश्न', 'अर्जी' और 'नूर की दो बूँदें'।

संग्रह की कुछ लघुकथाएँ पाठक को उलझाती हैं, कुछ लघुकथाएँ लेखक के दावे के बावजूद असंवेदनशीलता का संदेश देती हैं, तो कुछ लघुकथाएँ पाठकों के सामने प्रश्न खड़े करती हैं। लघुकथाएँ 'चिर सखा', 'लुका छुपी', 'मधुर गान', 'तेरी मेरी कहानी' और 'राज भोग' इसके कतिपय उदाहरण हैं। इस वैविध्य को लेखक का शिल्प-सौष्ठव भी कहा जा सकता है। 'अधिकार', 'बत्तियों वाली', 'ओए मेरी सखी' जैसी कुछ लघुकथाएँ अन्य की तुलना में कुछ कम प्रभावशाली प्रतीत होती हैं।

हर लेखक का अपना अनुभव-संसार होता है। उसकी रचनाओं में यह अनुभव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ता है। उनके अनुभव-संसार का वैविध्य उनकी लघुकथाओं में इतना विस्तीर्ण है कि चकित करता है। संग्रह की 56 लघुकथाओं में से 11 ऐसी हैं, जिन्हें दिव्यांग विमर्श की संज्ञा दी जा सकती है। लेखक का अपनी मेधा के प्रति यह आत्मविश्वास स्तुत्य है।

आसूदाणी सिंधी मातृभाषी हैं। उनकी लघुकथाओं की भाषा नदी के सहज, सरल प्रवाह की तरह गतिमान प्रतीत होती है। वे अंग्रेजी पढ़ाते हैं। महाराष्ट्र में रहते हैं। स्वाभाविक है कि मराठी भाषा का प्रभाव उनके ऊपर यथेष्ट रहा होगा। लघुकथाओं में जिस प्रांजल हिंदी का प्रयोग आसूदाणी ने किया है, उसे देखकर तिलमात्र भी आभास नहीं होता है कि वे इस भाषा में रचे-बसे नहीं हैं।

आसूदाणी के भाषा ज्ञान को स्वीकार करने के साथ उनकी शब्दावली की प्रचुरता एक दूसरा पक्ष है, वह चकित भी करता है और चमत्कृत भी। वे अपनी लघुकथाओं में केवल हिंदी के शब्दों का प्रयोग करते हैं। वर्तमान दौर के अनुसार वे अंग्रेजी शब्दों को इस्तेमाल करके छद्म आधुनिकता का प्रदर्शन नहीं करते हैं। यहाँ तक कि अंग्रेजी शब्दों की छाया भी आसूदाणी की हिंदी शब्दावली पर दृटिगोचर नहीं होती है। उनके विशद् शब्द-भंडार का परिणाम उनकी लघुकथाओं की भाषा में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरा दिखाई देता है। शब्दों का प्रयोग माला में चुन-चुनकर नगीने पिरोने का अहसास देता है। बताया न जाए तो सिंधी या अंग्रेजी की उनकी पृष्ठभूमि का अनुमान लगाना असंभव कार्य है।

आसूदाणी की आयु अभी 58 वर्ष है। जीवन और साहित्य के अनेक पायदान उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अध्यवसाय, अनुभव-वैविध्य और नया सीखते रहने की उनकी प्रवृत्ति के कारण साहित्य में उनके महत्वपूर्ण अवदान की गति को रोकना संभव नहीं है। उनसे हिंदी साहित्य को विपुल अपेक्षाएँ हैं। 'बूँदें' के लिए आसूदाणी को बधाई। पाठकों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

चयनित कहानियाँ

समीक्षक : **बलराम अग्रवाल**

कहानीकार : **अवधेश श्रीवास्तव**

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, इन्द्रपुरी, नई दिल्ली-110012

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 225/- (पेपरबैक)

अवधेश श्रीवास्तव द्वारा रचित कहानियाँ अनेक प्रगतिशील और सामाजिक विशेषताओं, आम आदमी की तकलीफों को स्वर देने की क्षमता के कारण अकसर ही चर्चा में बनी रही हैं। वह आठवें दशक के महत्वपूर्ण कथाकार हैं। अवधेश जी की कहानियों में सातवें-आठवें दशक की युवा पीढ़ी के त्रासों का प्रतिनिधित्व हुआ है। आश्चर्य की बात यह है कि युवा पीढ़ी के वे त्रास इक्कीसवीं सदी के इस तीसरे दशक में भी लगभग ज्यों-के-त्यों वर्तमान हैं।

इस संग्रह की कहानी 'दरार' में नायक अपनी दीदी की ससुराल वाले घर का परिचय कुछ इस प्रकार से देता है, 'वही कोठी दीदी का घर है, जहाँ दीदी को कैद हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।' इस वाक्य के माध्यम से कथानायक ने दीदी के ससुराल की संपन्नता का और ससुराल में दीदी की दयनीय स्थिति, दोनों का वर्णन कर दिया है। 'बंद पलकों के अँधेरे' और 'बचपन' इस संकलन की आकारगत छोटी कहानियाँ हैं। 'बंद पलकों के अँधेरे' की युवती अमिता ने विवाह के लिए जिस युवक का चुनाव किया, उससे निर्वाह न हो सका, और जिससे विवाह नहीं किया, उससे पुनः मिलन में सामाजिक रूढ़ियाँ बाधा बन गईं।

'बचपन' में बचपन तो है ही, एक रानी और तीन राजकुमार भी हैं। इक्कीसवीं सदी में भी रानी और राजकुमार! ये चारों पात्र कौन हैं? इस गुत्थी को समझने के लिए आपको इस खूबसूरत कहानी के एक-एक पात्र के कार्यकलापों और आचार-विचारों से गुजरना होगा। कहानी में 'स्ट्रीट डॉग्स' के प्रति मानवीय संवेदना का स्वाभाविक रूप उभरकर आया है। 'विमल मेहता सेकिंड' और 'अपनी-अपनी दुनिया' को संग्रह की अपेक्षाकृत लंबी कहानियाँ कहा जा सकता है। इनमें 'विमल मेहता सेकिंड' समूचे कॉलेज प्रशासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का कच्चा चिट्ठा है। त्रासदी यह है कि जितने मौजूँ ये सवाल आधी सदी पहले थे, उतने ही मौजूँ आज भी हैं। त्रासदी यह भी है कि इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन को तैयार छात्रों के बीच जो सवाल आज उभर रहे हैं, वे उन दिनों भी ज्यों-के-त्यों उभरते थे।

'बंद पलकों के अँधेरे', 'आवाज', 'प्यार एक खुशबू है', 'सीने पर ठुकी कील' और 'जख्म' इस संग्रह की अपेक्षाकृत छोटे आकार की कहानियाँ हैं। 'आवाज' उन दिनों की कहानी है, जब कर्मचारी यूनियनें काफी प्रभावशाली हुआ करती थीं; और वह भी मजदूर हितों के प्रति समर्पित अपने कार्यकर्ताओं की बदौलत। ऐसी कहानियों में तीन प्रमुख पात्र हुआ करते हैं, जो इसमें भी हैं—सेठ, यानी मिल अथवा कारखाने का मालिक, बेचन, यानी मालिक का हितसाधक कुत्ता और बिरजू, यानी अपने संगी-साथी मजदूरों-कामगारों के हित के प्रति सचेत और संवेदनशील व्यक्ति। इन तीन के अलावा एक चौथा, अशरीरी पात्र भी हुआ करता है—सचेत और संवेदनशील व्यक्ति के चरित्र पर अपने ही लोगों की संदेह-दृष्टि। ये चारों ही पात्र 'आवाज' कहानी में पूरी शिद्दत के साथ मौजूद हैं।

लेखक यह बताने में पूरी तरह कामयाब हैं कि कारखाने के सामान्य कामगार और ऑफिसर्स के बीच वही 'खाई' है, जो मध्यवर्गीय समाज में गरीब और अमीर के बीच तथा सवर्ण और दलित के बीच है। यहाँ मजदूर दलित जाति का नहीं, बल्कि ब्राह्मण जाति का है। लेकिन पूँजीपतियों और ऑफिसर्स की नजर में जातियाँ चार नहीं, सिर्फ दो हुआ करती हैं—शोषित और शासक, मजदूर और मालिक। यह कहानी उस दौर-विशेष का मजदूर-इतिहास है, जब उनके कुछ नैतिक और सामाजिक मूल्य हुआ करते थे। यह उस दौर की कहानी है, जब समस्त दैविक प्रताड़नाओं से त्रस्त और अनेक प्रलोभनों से घिरा निर्भीक बिरजू अपने मजदूर साथियों के पक्ष में बयान देता है—'मेरी दरख्वास्त है कि इस केस को आगे बढ़ा दिया जाए, समझौते का प्रश्न ही नहीं उठता...' उस दौर में यूनियन ही नहीं, मजदूर भी जीतता था। यह जीत वस्तुतः नैतिक मूल्यों की हुआ करती थी।

'अपनी-अपनी दुनिया' में दो मित्रों में से एक को, जो वस्तुतः कथाकार है, परिस्थितियाँ एक बड़े प्रकाशनगृह में नौकरी करने को विवश कर देती हैं तो दूसरा, स्वयं का ही अखबार चलाता है। दोनों बेहद खुरदुरी और पथरीली जमीन पर खड़े हैं; लेकिन व्यक्तिगत रूप में प्रत्येक यह समझता है कि सिर्फ उसी ने कष्टों वाले घिनौने दिन देखे हैं, दूसरे ने नहीं। यह कहानी पत्रकारिता तथा रचनात्मक लेखन, दोनों से जुड़े गॉड-फादर विहीन, अपने सिद्धांतों पर अड़े रहने और 'लिटरेचर का भूत' सिर पर लादे घूमने वाले युवाओं की असमय मृत्यु के कड़वे यथार्थ से पाठक को परिचित कराती है, उनकी परिणति बताती है। निस्संदेह, कितने ही पत्रकार और कितने ही साहित्यकार इस घिनौनी दुनिया में अपने-अपने अहं के साथ सरकारी अफसर जैसी जिंदगी जी रहे हैं। कथापात्र योगेंद्र के माध्यम से अवधेश श्रीवास्तव कुछ ऐसी सच्चाइयों को उजागर करने का साहस दिखाते हैं, जिन्हें उजागर करने के लिए लोहे का कलेजा चाहिए।

कुल मिलाकर, अवधेश श्रीवास्तव की 'चयनित कहानियाँ' को समय-विशेष का कथात्मक इतिहास भी कहा जा सकता है।

समीक्षक : **पवन करण**

कवि : **उस्मान खान**

प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश-211001

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 250/-

इच्छाओं के जीवाश्म

» मन उदास है। भाषा उदास है। कविता उदास है। उसे किसी भी कोने से, किसी भी कोने तक नाप लो, कविता की यह उदासी धरती के इस छोर से उस छोर तक छितरी है। आसमान से धरती तक उदासी की एक डोर है। दोनों के बीच हवा में हिलती हुई। कविता इतनी उदास क्यों है? भाषा इतनी हताश क्यों है? खुद पर खुद का इतना अविश्वास क्यों है? उस्मान खान के कविता-संग्रह 'इच्छाओं के जीवाश्म' में अपने हाथों निराशाओं के इन जालों की निर्मिति—निरंतरता को बूझने का विफल उपक्रम किया जा सकता है। प्रारंभ से विफलता के बीच का तय किए जाने वाला कँटीला रास्ता ही इस प्रयास का हासिल हो सकता है।

क्या अँधेरे को काटने की कोशिश, अँधेरे को समझने की तुलना में, एक विफल कोशिश है। मगर शोध और उससे हासिल, इस कथन के रास्ते में आकर खड़ा हो सकता है। अनुभव का अपना मूल्य है। कविता बस वहीं नहीं बसती, जहाँ संतोष और उल्लेख की शक्ल में सब प्राप्त है। कविता वहाँ भी थककर सुस्ताती और उठकर अँगड़ाई लेती है, जहाँ प्राप्त होते हुए भी कुछ प्राप्त नहीं। जहाँ पर सब पर कुछ का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कब्जा है। जहाँ एक चाबुक है, जिसकी नजर आपकी पीठ पर है। जहाँ आप खुले बंदी हैं।

भाषा और कविता की उदासी सीधे नागरिक समाज से जुड़ती है। मन में छटपटाहट है तो दिल की धड़कनें तेज। 'इच्छाओं के जीवाश्म' संग्रह में संकलित उस्मान खान की कविताओं के चेहरे पर अधिकतम बेचैनी और न्यूनतम राहत की गहराती लकीरों को पहचाना जा सकता है। तब, भाषा और कविता की निराशा के पीछे कारक तत्व कौन-से हैं? निस्संदेह, राजनैतिक-समकाल इसकी पृष्ठभूमि में सक्रिय है। एक बड़ी नागरिक-संख्या की शक्ल में एक समाज का संदेहास्पद होना इसकी निरंतरता और वृद्धि में कारक तत्व बना है। मगर भाषा के उदास और कविता के निराश होने की नौबत तब आती है, जब मनुष्य से उसका विश्वास उठने लगता है। मनुष्य मन का आलस उसे पराजित करने लगता है। जब विवेक कुतर्क और मक्कारी देने लगता है। आखिर, भाषा ने एक समाज के ठहर जाने अथवा पीछे चल देने की कल्पना तो शायद कभी नहीं की होगी? समावेशी कल की कल्पनाओं से भरी कविताओं ने भी नहीं सोचा होगा कि वह एक दिन सत्ता के सामने जुड़े हाथों में और उसकी प्रशंसा को उत्सुक होंठों पर होंगी।

कवियो, बेचैनी से बचने का इतना पस्त और हारा हुआ उपाय? उस्मान खान की कविता सूनी-पथरीली गलियों के सन्नाटों में विचरती कविता की तरह हमें मिलती है। वह हमसे तब ही 'हम-मन' होती है, जब हम उसे, उस जैसे लगते हैं। जैसे, जब दो निरंतर हारते जाते मनुष्य एक-दूसरे का हाथ एक-दूसरे से अपनी कहने के लिए थाम लेते हैं। कविता में दिल की दास्तान आसानी से समझ आती है, मगर पीड़ा से पैदा टीस को महसूस करने में कठिनाई का सामना करना होता है। आखिर, दुःख को कौन अपने दिल में स्थान देना चाहता है? मगर पीड़ा होती है तो होती है। उसके होने को नकारा नहीं जा सकता। उसकी आँख में अपना चेहरा देखा जा सकता है।

मगर उस्मान की कविताओं में बहुत कुछ अदृश्य है। दृश्य के उस पार है। उसके होने की कल्पना उनकी कविता पढ़ते ही होने लगती है। अदृश्य, अपरिभाषित, मगर पकड़ में आता, महसूस होता, और यह महसूस होना ही उनकी कविता में बहाव की तरह है। जो एक तंज भरे स्थायी तनाव की तरह संग्रह में प्रारंभ से अंत तक बना रहता है। मगर ऐसा नहीं कि उनकी कविता में उम्मीद की किरण नहीं भकभकाती। तनाव और खीज से उत्पन्न ईंधन उसे जलाए रखता है। कवि की कविता उसी की कम-ज्यादा होती रोशनी में सँभलकर अपने तेज कदम आगे रखती है।

उस्मान की कविताओं में कवि-कथन की खासियत अधिकतर अबूझ है। उनकी कविता के द्वार तब खुलते हैं जब हम खुद के भटकाव को नियंत्रित कर अपनी समझ की सामर्थ्य के कपाट खोलते हैं। यहीं पर कला और प्रतीकों के नव-समृद्ध स्तर पर कवि की कवि-सामर्थ्य वास करती है। उस्मान की कविता में भी पूरी दुनिया है, मगर उसे देखने, समझने और उससे प्रेम और उसके प्रति अपना क्षोभ प्रकट करने की, कुछ पूर्ववर्ती कवियों की विशेषता का अनुकरण करती, उसमें कुछ अपना शामिल करती, उसे समृद्ध करती, उनकी दृष्टि अपनी है।

यह संग्रह अपने शीर्षक के साथ न्याय करता हुआ दिखता है। कवि सहृदय पाठकों को पसंद आने वाला संग्रह है। कवि को शुभकामनाएँ!

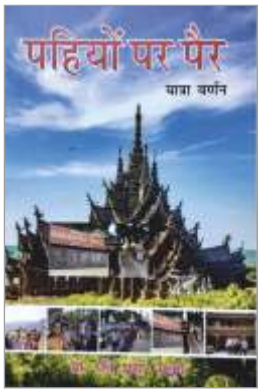

समीक्षक : **डॉ. उमेशचन्द्र सिरसवारी**

लेखक : **प्रो. रवि शर्मा 'मधुप'**

प्रकाशक : साहित्यभूमि, मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

पृष्ठ : 143

मूल्य : रु. 595/-

पहियों पर पैर

» 'पहियों पर पैर' प्रो. रवि शर्मा 'मधुप' का नव प्रकाशित यात्रा-वृत्तांत है। पाठकों को इस पुस्तक का शीर्षक 'पहियों पर पैर' चौंकाता है। लेखक ने स्वयं इस बात को स्वीकारते हुए लिखा है, 'वास्तव में कई बार मुझे ऐसा लगता है कि मेरे पैरों में चक्र है या मेरे पैर पहियों पर लगे हैं, जिसके कारण समय-समय पर पर्यटन के उद्देश्य से यात्राएँ करने का सौभाग्य मिलता रहा है।'

यह सच है कि कुछ लोग कार्यालयी कामकाज के चलते यात्राएँ करते हैं, तो कुछ लोग प्रकृति, समाज और देश के साथ-साथ संसार से तादात्म्य स्थापित करने, उन्हें जानने-समझने, उनके माध्यम से अपनी सर्जनात्मकता को विकसित करने, जीवन की भाग-दौड़ से थोड़ा अलग हटकर आनंद लेने के उद्देश्य से यात्रा करते हैं। प्रो. रवि शर्मा 'मधुप' की ये यात्राएँ इसी कड़ी का एक हिस्सा हैं।

लेखक प्रो. रवि शर्मा 'मधुप' ने अपने जीवन में देश और विदेश की कई यात्राएँ की हैं, जिनमें थाईलैंड, मॉरीशस की विदेशी यात्रा के साथ-साथ भारत के कई शहरों जैसे—खजुराहो, सिक्किम, अंडमान-निकोबार, शिलांग, हैदराबाद आदि की भी यात्राएँ की हैं। यह यात्राएँ कई दृष्टियों से खास हैं। इनमें केवल यात्रा का यथार्थ चित्रण ही नहीं है, बल्कि उस स्थान के समाज, साहित्य, संस्कृति तथा सांस्कृतिक विरासत का भी सुंदर चित्रण लेखक ने किया है।

लेखक की थाईलैंड यात्रा की बात करें, तो यह देश भारत का सांस्कृतिक साथी तो है ही, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक भागीदारी भी निभाता रहा है। भारत-थाईलैंड के रिश्तों के संबंध में लेखक लिखता है, 'भारतवंशियों ने अपने खून-पसीने और त्याग-बलिदान से इन देशों को विकास के पथ पर अग्रसर किया और उन्हीं के प्रयासों से ये देश आज विकसित होने की ओर निरंतर बढ़ रहे हैं।' थाईलैंड में भारतीय व्यंजन आसानी से मिल जाते हैं। यहाँ लोग थाई भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी और हिंदी का भी प्रयोग करते हैं। हिंदी फिल्में यहाँ काफी लोकप्रिय हैं। आप यहाँ लोगों को हिंदी गाने गुनगुनाते हुए देख सकते हैं।

लेखक की एक यात्रा खजुराहो की है, जो भारत की कला, साहित्य, संस्कृति, इतिहास और धर्म विषयक चिंतन को समझने का अद्वितीय माध्यम है। वहाँ का प्राकृतिक वातावरण आपको साफ-सुथरा मिलेगा। भीड़-भाड़ से दूर, प्रदूषण और भाग-दौड़ से दूर यह रमणीय स्थल पर्यटकों को आकर्षित करता है। यहाँ आपको विभिन्न मंदिरों में भारतीय स्थापत्य और कला के अद्भुत नमूने देखने को मिलेंगे। लेखक ने खजुराहो का बहुत ही मनोहारी वर्णन अपने इस यात्रा-वृत्तांत में किया है।

पर्यटन हर व्यक्ति को प्रेरित करता है। यात्रा से व्यक्ति का चित्त कुछ नया करने के लिए प्रेरित होता है। इसीलिए तो हिंदी के बड़े साहित्यकारों ने यात्राएँ कीं, जिनमें राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, मोहन राकेश और रामवृक्ष बेनीपुरी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस पुस्तक में लेखक की सिक्किम यात्रा भी है। सिक्किम स्वच्छता और सौंदर्य का प्रतीक है। यहाँ न तो अधिक गर्मी होती है, न अधिक सर्दी। यहाँ का मौसम मनभावन रहता है। हवा के साथ-साथ लहराते, झूमते-नाचते बादल सबको आकर्षित करते हैं। यहाँ की स्वच्छता का राज है, यदि आप रास्ते में कहीं कचरा डालेंगे तो जुर्माना भरना पड़ेगा। यहाँ के ग्रंथागारों में लेप्चा, संस्कृत, तिब्बती भाषा की दुर्लभ पांडुलिपियाँ तथा प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, चित्र आदि आकर्षण का केंद्र हैं। यहाँ के लोगों के परिधान पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। मंदिरों की झाँकियाँ लोगों का मन मोह लेती हैं। हिममंडित पर्वत शृंखला मन को भाने वाली हैं। लेखक वर्णन करते हुए लिखते हैं, 'हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाएँ, विविधतापूर्ण वृक्षों-वनस्पतियों से भरे सघन वन, झर-झर झरते झरने, पवित्र गुफाएँ, औषधीय तप्त कुंड, नदियाँ तथा झीलें सिक्किम को सैलानियों का स्वर्ग बना देती हैं। यहाँ पक्षी निहारन, पर्वतारोहण, ट्रैकिंग, रिवर राफ्टिंग, रॉक क्लाइंबिंग आदि का आनंद लिया जा सकता है।' यहाँ के उत्पाद भी विशिष्ट हैं। सिक्किम का सौंदर्य व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को स्फूर्ति देता है।

लेखक की अगली यात्रा मॉरीशस की है। मॉरीशस का नाम जेहन में आते ही सबसे पहले जुबान पर मॉरीशस के कथा सम्राट, 'मॉरीशस के प्रेमचंद' के नाम से मशहूर, अभिमन्यु अनत का नाम उभरकर आता है। उन्होंने अपने लेखन में गिरमिटिया मजदूरों की वेदना का जीवंत वर्णन किया है। 'लाल पसीना' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। लेखक ने भी अपनी इस यात्रा में उनका जिक्र किया है। लेखक ने भारत के अंडमान-निकोबार द्वीप, शिलांग तथा हैदराबाद की अपनी रोमांचक यात्राओं का भी इस पुस्तक में वर्णन किया है। ये यात्राएँ जीवन में कुछ कर गुजरने के सूत्र छोड़ती हैं। ये यात्राएँ उत्साह, कौतूहल तो बढ़ाती ही हैं, मनोरंजन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। यह पुस्तक पाठकों को अवश्य ही पसंद आएगी।

समीक्षक : **सूर्यकांत शर्मा**

लेखक : **डॉ. कमलेश कुमारी**

प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

पृष्ठ : 240

मूल्य : रु. 350/-

मुल्कराज आनंद

के हिंदी में अनूदित प्रतिनिधि उपन्यास (दलित जीवन के संदर्भ में विश्लेषण)

मुल्कराज आनंद एक नाम, जो भारत के चुनिंदा अंग्रेजी भाषा के लेखकों में शामिल है। इस बहुआयामी और मानवता के पैरोकार को पारंपरिक समाज में गरीब वर्ग के जीवन के चित्रण के लिए जाना जाता है। भारत में गरीबी से जूझ रहे लोगों के यथार्थवादी और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण के लिए वे चर्चित हैं। आज हम बात कर रहे हैं उस मुल्कराज आनंद की, जिसने दलित, दलितों की कारुणिक और दयनीय स्थिति पर उस समय लिखा, जबकि इस विषय पर लिखने का साहस जुटाने वाले विरले ही थे और शायद उस समय अंग्रेजी में इसलिए भी लिखा होगा कि अंग्रेजों का राज और अंग्रेजी का बोलबाला था। तत्पश्चात्, उनके प्रतिनिधि उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ और इससे उनकी कृतियाँ स्वतंत्र भारत में और अपनी पैठ बनाकर मुखरित हुईं। उस समय के शिक्षकों ने उसे अपने विद्यार्थियों और शोधार्थियों को पढ़ाया और आनंद के साहित्य में समाज के बड़े, परंतु उपेक्षित, गरीब और सताये गए वर्ग, दलित ने अपनी आपबीती या अक्स या अपनी भावनाओं और समस्याओं को देखा और महसूस किया। इस प्रकार, दलितों और दलित साहित्य में मुल्कराज आनंद एक कालजयी साहित्यकार या पैरोकार के रूप में स्पष्ट रूप से उभरकर आए। पाठक सोच रहे होंगे कि क्या बात है? जी हाँ, ये सभी और इसकी अनुसंधानिक पड़ताल, पुस्तक 'मुल्कराज आनंद के हिंदी में अनूदित प्रतिनिधि उपन्यास (दलित जीवन के संदर्भ में विश्लेषण)' में की गई है, जिसकी लेखिका डॉ. कमलेश कुमारी हैं।

वस्तुतः, यह एक शोध प्रबंध है, जिसे पुस्तकीय रूप में प्रकाशित किया गया है। यहाँ पर मुल्कराज आनंद के हिंदी में अनूदित प्रतिनिधि उपन्यासों में दलित जीवन के संदर्भ में गहन विश्लेषण किया गया है। लेखिका ने अपने इस अनुसंधान कार्य को पाँच अध्यायों में वर्गीकृत किया है। इसमें पहले और दूसरे अध्यायों को, पाठकों की सुविधा हेतु, चार उप अध्यायों में विन्यासित किया गया है। पहले अध्याय में भारतीय अंग्रेजी उपन्यासों की परंपरा और मुल्कराज आनंद की रचना पर चर्चा की गई है। दूसरे अध्याय में मुल्कराज के उपन्यासों का वर्गीकरण किया गया है। तीसरे और चौथे अध्याय के उप अध्यायों में जीवन-यथार्थ और जीवन-दृष्टि पर मुल्कराज आनंद की रचनाओं तथा अन्य हिंदी रचनाकारों की रचनाओं में निहित दलित प्रसंगों को उदाहरण सहित विश्लेषित किया गया है। लेखिका ने अनुवाद की चिंतन परंपरा, उसकी परिभाषा तथा उसके महत्व पर भी व्यापक दृष्टि से उदाहरण सहित पड़ताल की है। साथ-ही-साथ, तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद के महत्व को भी रेखांकित करने का सफल प्रयास किया गया है। जहाँ तक भाषा-शैली और सांस्कृतिक स्तर की बात है, तो यहाँ पर मुल्कराज आनंद की अनूदित रचनाओं का अनुवादपरक विश्लेषण उदाहरणसहित किया गया है और यह काफी बेहतरीन बन पड़ा है। पुस्तक के अंतिम या सही अर्थों में पाँचवें अध्याय में भारतीय अंग्रेजी साहित्यकार, मुल्कराज आनंद की गैर-दलित रचनाकारों और दलित रचनाकारों की तुलना तथा मुल्कराज आनंद के स्थान को निर्धारित कर प्रभावपूर्ण ढंग से रेखांकित कर उल्लेखनीय रूप से उकेरा गया है। अनुवाद की भाषा और शैली पर भी महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की गई हैं, जिसमें यह पड़ताल करने की कोशिश की गई है कि भाषा किस तरह वर्णाश्रम व्यवस्था की मान्यताओं, मूल्यों, जातियों, मानसिकता और दुराग्रहों से प्रभावित होती हैं तथा मुहावरों, लोकोक्तियों में यह व्यवस्था किस तरह संचारित होती है। पड़ताल का एक और सफल उद्देश्य यह भी रहा कि दलितों के वर्णाश्रम व्यवस्था के विरुद्ध उठ रहे विद्रोह और आक्रोश को यह भाषा किस तरह से व्यक्त करती है।

इस पुस्तक में लेखिका ने अपने अनुसंधान में मुख्य रूप से मुल्कराज आनंद के व्यक्तित्व एवं उनके संपूर्ण उपन्यासों का संक्षिप्त वर्णन भी शामिल किया है। मुख्य रूप से, मुल्कराज आनंद के हिंदी में अनूदित प्रमुख सात उपन्यासों, यथा—'अछूत', 'कुली', 'गाँव', 'सड़क', 'सूरजमुखी', 'शहीद' और 'दो पत्तियाँ' और 'एक काली का दलित जीवन' का उदाहरण सहित विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक इसलिए भी पढ़ी और गुनी जाएगी, क्योंकि इसमें मुल्कराज आनंद के व्यक्तित्व, कृतित्व और उद्देश्यपूर्ण शोध के साथ-साथ अन्य संबद्ध संदर्भ और विद्वानों का उल्लेख भी यथास्थान प्रासंगिक एवं उचित रूप से किया गया है। उदाहरण के तौर पर, आनंद के उपन्यास 'अछूत' दलित साहित्य के औपचारिक आगमन से बहुत पहले यानी सन् 1935 में लिखे गए। इसी उपन्यास की तुलना मराठी के प्रसिद्ध दलित लेखक दया पवार की आत्मकथा 'अछूत', मूल मराठी में 'बलूत', से की गई है।

लेखिका ने मुल्कराज आनंद के उपन्यासों को दलित जीवन के संदर्भ में और उनके विषय-वस्तु के साथ दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र की दृष्टि से भी विश्लेषित किया है। मुल्कराज आनंद अंग्रेजी के बड़े उपन्यास लेखकों में से एक माने जाते हैं। हिंदी में उनके उपन्यासों के अनुवाद तो हुए हैं, लेकिन उन पर कोई चर्चा विशेष या ऐसा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ, जिससे सामान्य पाठकों या शोधार्थियों का ध्यान उस पर जाता। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि इस किताब का महत्व है और आने वाली पीढ़ियाँ तथा अन्य शोधार्थी भी प्रेरित होंगे कि वे मुल्कराज आनंद जैसे भारत के महत्वपूर्ण उपन्यासकार के लेखन को सही परिप्रेक्ष्य एवं हिंदी भाषा में समझ सकें। कुल मिलाकर, यह एक संतुलित, अनुसंधानित, श्रमसाध्य पुस्तकीय प्रयास कहा जाएगा, जिसे सभी संबद्ध क्षेत्रों के बुक शेल्फ में स्थान मिलेगा।

समीक्षक : **मोहन शर्मा**

लेखक : **नवनीत कुमार गुप्ता** और **अभय एस.डी. राजपूत**

प्रकाशक : पेन्सी बुक्स, छावला, नई दिल्ली-110071

पृष्ठ : 114

मूल्य : रु. 350/-

जल से जीवन : समुद्र से समृद्धि तक

भारत सहित पूरी दुनिया आज सतत विकास की ओर अग्रसर है। बदलते जलवायु संकट, समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर बढ़ते अत्यधिक दबाव और वैश्विक संसाधनों के असमान वितरण ने इस दिशा में सोचने के लिए हमें विवश किया है। ऐसे में लेखकद्वय, नवनीत कुमार गुप्ता और अभय एस.डी. राजपूत की अभी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक, 'जल से जीवन : समुद्र से समृद्धि तक' पाठकों को महासागरों और उनसे जुड़ी नीली अर्थव्यवस्था की गहराइयों तक ले जाती है। यह पुस्तक न केवल महासागरों की विशेषताओं और उनकी अनिवार्यता पर केंद्रित है, बल्कि यह भी स्पष्ट करती है कि आने वाले दशकों में विकसित भारत 2047 के निर्माण में महासागर किस प्रकार केंद्रीय भूमिका निभा सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में जिस सुसंगत और सहज ढंग से इस जटिल विषय को प्रस्तुत किया गया है, उससे यह पुस्तक न केवल सामान्य पाठकों, बल्कि प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे विद्यार्थियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक में 13 अध्याय हैं, जिनके अंतर्गत, महासागरों की संरचना, उनका महत्व, जैवविविधता के संरक्षण, महासागरीय संसाधन आदि कई विषयों के साथ ही सागरमाला परियोजना, समुद्रयान मिशन जैसे महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों पर भी सारगर्भित जानकारी दी गई है।

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें महासागरों की भूमिका को केवल जल स्रोत या व्यापार मार्ग के रूप में न देखकर पृथ्वी की जलवायु और मौसम की नियंता के रूप में समझाया गया है। महासागर हमारे ग्रह के तापमान को नियंत्रित करते हैं, वर्षा चक्र को प्रभावित करते हैं और जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन का बड़ा हिस्सा भी प्रदान करते हैं। लेखक ने समुद्री धाराओं, महासागरीय ऊष्मा भंडारण और वातावरण-समुद्र के बीच ऊर्जा के आदान-प्रदान जैसे जटिल वैज्ञानिक तथ्यों को सरल भाषा में समझाकर आम पाठक के लिए उन्हें सुलभ बना दिया है।

महासागर न केवल जलवायु नियमन में महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे मानव-समाज के लिए असीम संसाधनों का खजाना भी हैं। पुस्तक में मछली-पालन, समुद्री खनिज, हाइड्रोकार्बन, जैव-संपदा और अपार ऊर्जा संभावनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। लेखक बताते हैं कि किस प्रकार गहरे समुद्र में उपलब्ध पॉलीमेटैलिक नोड्यूल्स, दुर्लभ खनिज और नई दवाओं की खोज भविष्य की अर्थव्यवस्था का आधार बन सकती है।

आज जब वैश्विक स्तर पर ऊर्जा संकट और संसाधनों की कमी जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, तब महासागरों के ये भंडार न केवल आत्मनिर्भरता की ओर ले जा सकते हैं, बल्कि रोजगार सृजन और सामाजिक समावेशन को भी प्रोत्साहित कर सकते हैं। पुस्तक का केंद्रीय भाग नीली अर्थव्यवस्था (ब्लू इकोनॉमी) है। लेखकद्वय ने स्पष्ट किया है कि यह केवल समुद्री संसाधनों के दोहन की अवधारणा नहीं है, बल्कि यह आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन और पर्यावरणीय संतुलन को एक साथ साधने का प्रयास है।

नीली अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सतत मत्स्य पालन, तटीय पर्यटन, अपतटीय ऊर्जा, समुद्री जैव-प्रौद्योगिकी, समुद्री खनन और समुद्री परिवहन जैसे कई क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है। पुस्तक में यह संदेश है कि यदि इन क्षेत्रों का विकास सतत और संतुलित रूप से किया जाए तो यह न केवल राष्ट्रीय आय को बढ़ा सकता है, बल्कि 'विकसित भारत 2047' के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी योगदान दे सकता है।

यह पुस्तक भारतीय परिप्रेक्ष्य में महासागरीय अनुसंधान की प्रगति पर भी विशेष प्रकाश डालती है। इस पुस्तक में, भारत में भारतीय राष्ट्रीय महासागरीय सूचना सेवा केंद्र, राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान और अन्य संस्थानों द्वारा किए जा रहे शोध को सरल शब्दों में प्रस्तुत किया गया है।

विशेष रूप से 'डीप ओशन मिशन' का उल्लेख पुस्तक को समकालीन और प्रासंगिक बनाता है। इस मिशन के अंतर्गत गहरे समुद्र की खोज, समुद्री जैवविविधता का अध्ययन, समुद्र के तल से खनिज निकालने की तकनीक और समुद्री पारिस्थितिकी संरक्षण पर जो काम हो रहा है, उसकी चर्चा पाठकों को भारत की वैज्ञानिक क्षमताओं पर गर्व करने का अवसर प्रदान करती है। समुद्र संरक्षण पर यह एक सारगर्भित और उपयोगी पुस्तक है।

समीक्षक : **प्रदीप कुमार शुक्ला**

लेखक : **मनीषा आवले चौगांवकर**

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्रा.लि., नोएडा, उत्तर प्रदेश-201301

पृष्ठ : 222

मूल्य : रु. 400/-(पेपर बैक)
रु. 499/-(हार्ड बाउंड)

एक अनिर्मित पथ मेरा

हाल में प्रकाशित 'एक अनिर्मित पथ मेरा' पुस्तक मेरे हाथों में है। इसमें वैचारिक लेखों का संग्रह है, इसमें शामिल सभी लेख बहुत प्रभावी, अच्छे व महत्वपूर्ण विचारों से ओत-प्रोत हैं। इसकी भाषा-शैली और विचार-प्रवाह अत्यंत सहज है। सभी लेखों को अलग-अलग सात भागों में बाँटकर पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखकर संगृहीत किया गया है। ये सातों भाग इस प्रकार हैं, 'मुझे बताना', 'सरस कहाँ है मुझे बाँधना', 'क्यों मन है सूने गाँव में', 'जीवन रेखाएँ', 'जीवन यात्रा', 'विकल्प क्या हमेशा रहेंगे' तथा 'निसर्म और हम'। इन सभी भागों में अलग-अलग दृष्टिकोण से लिखे गए सभी लेख सार्थक रूपों में अपनी छटा बिखेरते हैं।

यह संग्रह स्त्रियों की दशा व दिशा को एक अलग नजरिये से प्रस्तुत करता है। लेखिका ने इस पर अलग तरह से अपनी लेखनी को धार दी है, जो कि एक सराहनीय कार्य बन पड़ा है। एक स्थान पर इस पुस्तक में लेखिका की यह स्वीकारोक्ति है, 'यह समय सारी मानवता के लिए मनुष्य होने का एक 'संघर्ष युग' कहा जा सकता है और इसका एक हिस्सा स्त्रियों का भी है और उनकी समता तथा न्याय को लेकर चलती हुई कशमकश भी इसी रण का मुख्य हिस्सा है।' वाकई, देखें तो हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति ऐसी मिली-जुली ही तो है। हमारा सामाजिक ढाँचा अति पुरातन व साथ-साथ रूढ़िवादी भी है। यह एक दीगर बात है कि स्त्रियों के समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए कानून हैं, यह उचित ही है। ये कानून स्त्रियों के संबंध में सामाजिक और प्रगतिशील भाव लिये दृष्टिगोचर होते हैं, पर एक बड़ी विडंबना है कि उन पर परिस्थितियों का दबाव व शोषण आदि भी पुरजोर है और जब ऐसा है तो कानून तक चाहे-अनचाहे उनकी पहुँच नहीं है। यह इस समय की आखिर विडंबना नहीं तो और क्या है?

इस पुस्तक में लेखिका ने केवल स्त्री-विमर्श को ही अपना साध्य नहीं रखा, बल्कि उन्होंने आधुनिक समय में विश्व में फैलते हुए बाजारवाद, पूँजीवाद और भूमंडलीकरण पर भी अपनी चिंता को प्रमुखता से पाठक वर्ग के सम्मुख रखा है। लेखिका की ये केवल चिंता ही नहीं है, बल्कि यह भी समाधान रूप में सुझाने का प्रयास है कि यह समय है कि हमें जिंदगी के मायनों को समझना ही होगा। आज के संदर्भ में यह जरूरी बात लगती है। इस पुस्तक के सभी लेख अलग-अलग वैचारिक भाव लिये समाज को सही दिशा देने में सफल कहे जा सकते हैं।

एक दूसरी सुंदर बात यह है, जिसका यहाँ जिक्र करना उचित लगता है कि पुस्तक में लेखों के बाद कहीं-कहीं कविताओं के माध्यम से भी लेखिका ने अपनी बात रखी। इसके पीछे भी दो वजहें हो सकती हैं— एक, वह कवयित्री हैं ही और दूसरी, वह शायद प्रत्येक लेख की प्रभावशीलता को और सहज व रोचक बनाए रखना चाहती हैं।

इस पुस्तक में शामिल विषय के संदर्भ में सूक्ष्मता से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इसमें भाषा की प्रवाहपूर्णता एवं गंभीरता दृष्टिगोचर होती है। इसके अधिकांश लेख पठनीय हैं और पाठकों को बाँधे रखते हैं। प्रस्तुत कृति प्रभावी, आकर्षक व पठनीय बन पड़ी है। यह पुस्तक पाठकों के लिए निश्चित रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

घोषणा-फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

पुस्तक संस्कृति (द्विमासिक)

1.	**प्रकाशन स्थल**	:	5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
2.	**प्रकाशन अवधि**	:	द्विमासिक
3.	**मुद्रक का नाम**	:	अनुज कुमार भारती, द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत), 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
4.	**प्रकाशक का नाम**	:	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
5.	**संपादक का नाम**	:	दीपक कुमार गुप्ता
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
6.	**पत्रिका का स्वामित्व**	:	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला-2026

(10 से 18 जनवरी, 2026)

–पुस्तक संस्कृति डेस्क

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला के आगामी संस्करण के आयोजन के साथ ही, मेले के 53 वर्ष पूर्ण होने का उत्सव मना रहा है। न्यास द्वारा प्रथम विश्व पुस्तक मेला वर्ष 1972 में आयोजित किया गया था। मेले में आने वाले दर्शकों की संख्या की दृष्टि से, यह विश्व के सर्वाधिक बड़े पुस्तक मेलों में से एक है।

इस वर्ष का नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला, 10 से 18 जनवरी, 2026 तक भारत मंडपम् परिसर, नई दिल्ली के नवनिर्मित हॉल संख्या 2-6 में आयोजित किया जाएगा। यह मेला, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत) द्वारा आयोजित किया जाता है। वर्तमान में, भारतीय प्रकाशन उद्योग विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला सभी भागीदारों को इस बढ़ते प्रकाशन उद्योग के साथ व्यापार करने का अद्भुत अवसर प्रदान करता है। यह मेला पुस्तकों, सह-प्रकाशन व्यवस्थाओं तथा व्यापार को बढ़ावा देने के लिए भी एक आदर्श स्थान है। इस नौ दिवसीय मेले के दौरान साहित्यिक एवं प्रकाशन से संबंधित गतिविधियों एवं संगोष्ठियों के आयोजन के अतिरिक्त, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है।

यह पुस्तक मेला विश्वभर के प्रमुख प्रकाशन-गृहों को भागीदारी के लिए आमंत्रित करता है। इस मेले में पिछले वर्ष 25 से अधिक देशों, लगभग 2,000 प्रकाशकों तथा लगभग 20 लाख आगंतुकों ने शिरकत की थी। इस वर्ष यह मेला लगभग 50,000 वर्गमीटर क्षेत्र में फैला होगा, जिसमें पिछले वर्ष से अधिक स्टॉल, लगभग तीन हजार, लगेंगे। मेले में 600 से अधिक साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ होने का अनुमान है।

प्रत्येक वर्ष नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला एक विशेष थीम पर आधारित होता है। इस वर्ष मेले की थीम है–'भारतीय सैन्य इतिहास : शौर्य एवं प्रज्ञा @75'। यह थीम पुस्तकों, पैनलों, पोस्टरों की एक समृद्ध एवं शानदार प्रदर्शनी तथा भारतीय सशस्त्र बल की वीरता एवं विरासत को प्रस्तुत करने वाले विशेष रूप से डिजाइन किये गए पवेलियन के जरिए प्रस्तुत की जा रही है। लगभग 1,000 वर्गमीटर के क्षेत्र में फैले इस पवेलियन का उद्देश्य थीम को सृजनात्मक एवं आकर्षक रूप से प्रस्तुत करना है, जिससे भारतीय सशस्त्र बल के शौर्य एवं योगदान का सम्मान हो। मेले के दौरान थीम मंडप पर अनेक साहित्यिक सत्र एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ आयोजित की जाएँगी।

मेले में विशेष रूप से डिजाइन किया गया बाल मंडप बच्चों के लिए आकर्षण का

केंद्र होता है। यहाँ साहित्य एवं पठन-संस्कृति को बढ़ावा देने वाली अनेक गतिविधियाँ, जैसे कथावाचन-सत्र, कार्यशालाएँ, पैनल चर्चाएँ, संवादात्मक सत्र, प्रश्नोत्तरी, विभिन्न प्रतियोगिताओं के साथ-साथ, बाल लेखक मंच का भी आयोजन किया जाता है। प्रसिद्ध लेखकों और चित्रकारों तथा शिक्षा और प्रकाशन जगत के विशेषज्ञों द्वारा आयोजित इन गतिविधियों में सरकारी एवं गैर-सरकारी स्कूलों, गैर-सरकारी संगठनों के अध्यापकों और बच्चों के साथ-साथ बाल साहित्य और पठन-संस्कृति के प्रोन्नयन से जुड़े लोग भी भारी संख्या में सहभागिता करते हैं।

मेले के विभिन्न हॉलों में रचनात्मक रूप से डिजाइन किये गए 'लेखक मंच' भारतीय प्रकाशकों, लेखकों तथा पुस्तक-प्रेमियों को पैनल-चर्चा, पुस्तक लोकार्पण तथा संवाद स्थापित करने के लिए बेहतरीन मंच प्रदान करते हैं। 'लेखक मंच'/'ऑथर्स कॉर्नर' के नाम से बने कोने, मेले में जीवंत साहित्यिक गतिविधियों का पर्याय बन जाते हैं। मेले के दौरान इन मंचों पर प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय लेखकों, साहित्यिक हस्ताक्षरों एवं रचनाकारों से मिलने का सुनहरा अवसर पाठकों को प्राप्त होता है। इस वर्ष मेले में 'ऑथर्स लाउंज', 'कैफे कॉर्नर' तथा 'इंटरनेशनल मीटिंग लाउंज' भी पाठकों को आकर्षित करेंगे।

मेले में एक अन्य आकर्षण का केंद्र होता है—'विदेशी मंडप', जिसमें अनेक देशों से आए प्रकाशकों की पुस्तकों से रूबरू होने का अवसर पुस्तक-प्रेमियों को प्राप्त होता है। पिछले वर्ष विश्व पुस्तक मेले में 'रूस' ने फोकस देश के रूप में भाग लिया था। इस वर्ष 'स्पेन' फोकस देश के रूप में भाग ले रहा है। इस वर्ष 'कतर' नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला-2026 में सम्मानित अतिथि देश के रूप में भाग ले रहा है। मेले में आने वाले पुस्तक प्रेमियों को विदेशी मंडप पर कतर की विभिन्न पुस्तकों को देखने का विशेष अवसर प्राप्त होगा। मेले के दौरान विदेशी मंडप पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का आयोजन अंतरराष्ट्रीय गतिविधि मंच पर किया जाता है, जिसमें विदेशी प्रदर्शकों/मिशनों/दूतावासों/सांस्कृतिक केंद्रों/पुस्तक प्रोन्नयन एजेंसियों द्वारा पुस्तक-लोकार्पण, पैनल चर्चाएँ, साहित्यिक कार्यक्रम एवं कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं।

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 'बीटूबी कार्यक्रम', 'सीईओ स्पीक ओवर चेयरमैन'स ब्रेकफास्ट' भी आयोजित किया जाता है, जिसमें मुख्य कार्यपालक अधिकारीगण (सीईओ) तथा वरिष्ठ कार्यकारी भाग लेते हैं। इस वर्ष 'सीईओ स्पीक' कार्यक्रम 11 जनवरी, 2026 को आयोजित होगा। मेले में भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुस्तक व्यापार संबंधी विचारों के परस्पर आदान-प्रदान हेतु 'नई दिल्ली प्रतिलिप्यधिकार मंच' का आयोजन भी किया जाता है। इस वर्ष इसका आयोजन दिनांक 12 तथा 13 जनवरी, 2026 को किया जाएगा। यह मंच प्रकाशकों के बीच एक नवीन व्यापारिक वातावरण में 'बीटूबी' सत्र प्रस्तुत करता है। यह अद्वितीय प्रारूप प्रतिभागियों को अपने प्रतिलिप्यधिकार मंच को सुरक्षित करने, परस्पर भेंट करने, अपने उत्पाद एवं विचार प्रस्तुत करने, अंग्रेजी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध पुस्तकों के अनुवाद एवं समझौतों को अंतिम रूप प्रदान करने के भी अवसर प्रदान करता है।

गत वर्षों की भाँति नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला-2026 का यह संस्करण भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सराबोर रहेगा। यहाँ लोक संस्कृति की झलक देखने को मिलेगी, जिसमें लोक मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्धन भी होगा। मेले में उत्सव का वातावरण बनाते, इस आकर्षक 'सांस्कृतिक मंच' पर लोक नाट्य, लघु नाटिका, नृत्य प्रस्तुति तथा शास्त्रीय संगीत से संबंधित प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं। लोक संस्कृति से जुड़े कार्यक्रम स्थानीय पारंपरिक परिधान में आयोजित होते हैं, जो न केवल दर्शकों और श्रोताओं का मन मोह लेते हैं, अपितु हमें स्थानीय संस्कृति से रूबरू भी करवाते हैं। इसके अतिरिक्त, यहाँ कवि सम्मेलन, मुशायरा, थीम आधारित प्रस्तुतियाँ एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि मुख्य आकर्षण होते हैं। इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सभी आयु-वर्ग के दर्शक भरपूर आनंद उठाते हैं। यह हर्ष का विषय है कि इस वर्ष नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला में प्रवेश पुस्तकप्रेमियों के लिए निःशुल्क रहेगा।

संविधान दिवस

पर संविधान उद्देशिका का पाठ और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन

संविधान दिवस को राष्ट्रीय उत्सव के तौर पर मनाते हुए 26 नवंबर, 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय में संविधान की उद्देशिका का सामूहिक वाचन किया गया। न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक, श्री कुमार विक्रम के नेतृत्व में न्यास के अधिकारियों और कर्मचारियों ने संविधान उद्देशिका का सामूहिक वाचन किया और इसमें बताये गए मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की।

इसके पश्चात्, संविधान के 75 वर्ष पूरे होने के उत्सव के एक हिस्से के रूप में अंतर विद्यालय प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित हुई। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले स्कूल थे—जीईएमएस इंटरनेशनल स्कूल, गुरुग्राम; माउंट आबू पब्लिक स्कूल, रोहिणी; सुचेता मेमोरियल स्कूल, गुरुग्राम और विश्व भारती पब्लिक स्कूल, नोएडा। चारों स्कूलों की टीमों ने उत्साहपूर्वक इस प्रतियोगिता में मुकाबला किया, जिसमें विश्व भारती पब्लिक स्कूल, नोएडा ने प्रथम पुरस्कार की ट्रॉफी जीती। न्यास के मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने विजयी टीम को पुरस्कार प्रदान किया। साथ ही, सभी टीमों को न्यास द्वारा प्रकाशित किताबों के सेट, बुक कूपन और सर्टिफिकेट प्रदान किये गए।

न्यास में मनाया गया राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ण होने का स्मरणोत्सव

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 07 नवंबर, 2025 को नई दिल्ली के वसंत कुंज स्थित अपने मुख्यालय में भारत के राष्ट्रीय गीत, 'वंदे मातरम्' की 150वीं वर्षगाँठ मनाई। न्यास के संपादक श्री बी.बी. पटेल के नेतृत्व में सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित 'वंदे मातरम्' का सामूहिक गायन किया तथा माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के संबोधन का लाइव टेलीकास्ट देखा। यह कार्यक्रम संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित राष्ट्रीय समारोह का हिस्सा था, जिसकी शुरुआत नई दिल्ली स्थित इंदिरा गांधी इंडोर स्टेडियम में माननीय प्रधानमंत्री की उपस्थिति में हुई। माननीय प्रधानमंत्री ने अपने उद्बोधन में कहा कि 'वंदे मातरम्' मात्र एक गीत नहीं, बल्कि भारत की आत्मा का एक पवित्र आह्वान है, जो भक्ति, शक्ति और दृढ़ता का प्रतीक है। राष्ट्रगीत की 150वीं वर्षगाँठ का उत्सव एकता, सांस्कृतिक गौरव और सामूहिक प्रगति को बनाए रखने की एक नई प्रतिज्ञा है।

'राष्ट्रीय एकता दिवस' और 'सतर्कता जागरूकता सप्ताह' कार्यक्रम का आयोजन

सरदार वल्लभभाई पटेल की 150वीं जयंती के अवसर पर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 31 अक्तूबर, 2025 को 'राष्ट्रीय एकता दिवस' और 'सतर्कता जागरूकता सप्ताह' (27 अक्तूबर-02 नवंबर, 2025) मनाया। वर्ष 2025 के सतर्कता जागरूकता सप्ताह का विषय था—'सतर्कता हमारी साझा जिम्मेदारी'। न्यास के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों ने अपने पेशेवर कर्तव्यों में पारदर्शिता, ईमानदारी और जवाबदेही के मूल्यों को बनाए रखने का संकल्प लिया। साथ ही, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने न्यास के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा को बनाए रखने की शपथ दिलाई और सरदार पटेल के जीवन और योगदान को याद किया। इस अवसर पर न्यास के संयुक्त निदेशक श्री राकेश कुमार भी उपस्थित रहे।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम पर कार्यशाला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 18 नवंबर, 2025 को वसंत कुंज, नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में कार्यस्थल पर जागरूकता, सम्मान और समानता को मजबूत करने और सभी कर्मचारियों के लिए स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण सुनिश्चित करने के लिए एक संवेदीकरण कार्यशाला का आयोजन किया। यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, 2013 (पीओएसएच अधिनियम), के अनुपालन के प्रति अपनी निरंतर प्रतिबद्धता के तहत, न्यास की आंतरिक शिकायत समिति (आईसीसी) द्वारा आयोजित इस कार्यशाला में न्यास के उन निरंतर प्रयासों को दर्शाया गया, जिनका उद्देश्य विश्वास और व्यावसायिक ईमानदारी पर आधारित एक सुरक्षित, सम्मानजनक और समावेशी कार्यस्थल का निर्माण करना है। इस कार्यशाला का संचालन सुप्रीम कोर्ट की अधिवक्ता सुश्री मुस्कान गुप्ता और एनबीटी-आईसीसी के सदस्यों, जिनमें श्री इमरान-उल हक, सुश्री कंचन वांचू शर्मा और सुश्री सुनीता नरोत्रा शामिल थीं, द्वारा किया गया। इस कार्यशाला में महिलाओं और पुरुषों, दोनों में जागरूकता बढ़ाने और सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने के महत्व पर प्रकाश डाला गया। इसमें इस बात पर भी बल दिया गया कि महिलाओं को उनके अधिकारों की पूरी जानकारी होनी चाहिए और जब भी उन्हें लगे कि उनकी निजता, सुरक्षा या गरिमा का उल्लंघन हुआ है, तो वे अपनी चिंताओं और समस्याओं को निर्भीकता से व्यक्त करें।

शारजाह अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले 2025 में भारत की ऐतिहासिक उपस्थिति दर्ज

भारत ने वैश्विक प्रकाशन जगत में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की, जब उसने 05 से 16 नवंबर, 2025 तक शारजाह के एक्सपो सेंटर में आयोजित शारजाह अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले (एसआईबीएफ) 2025 में अपना पहला भारतीय स्टैंड स्थापित किया। यह भारत के बाहर देश का सबसे बड़ा प्रकाशन प्रदर्शन रहा, जो भारत और अरब जगत के बीच मजबूत सांस्कृतिक और साहित्यिक साझेदारी को दर्शाता है।

यूएई में भारत के माननीय महावाणिज्यदूत श्री सतीश कुमार सिवन ने प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, अध्यक्ष, एनबीटी; डॉ. शम्स इक़बाल, निदेशक, राष्ट्रीय उर्दू भाषा संवर्धन परिषद् (एनसीपीयूएल) और श्री राकेश कुमार, संयुक्त निदेशक (प्रशासन एवं वित्त), एनबीटी की उपस्थिति में इस स्टैंड का औपचारिक उद्घाटन किया। समारोह में गणमान्य व्यक्ति, प्रकाशन जगत के व्यावसायिक और लेखक समुदाय के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

इस बार के मेले ने खाड़ी क्षेत्र में भारतीय पाठकों के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। पहली बार, एनबीटी पुस्तकें प्रदर्शनी के लिए प्रदर्शित होने की बजाय सीधे बिक्री के लिए उपलब्ध थीं। यह कदम यूएई, विशेष रूप से अबू धाबी और शारजाह में एनबीटी की पुस्तकों की बढ़ती माँग के जवाब में उठाया गया है। भारतीय प्रकाशनों की वैश्विक उपस्थिति को बढ़ाने की दिशा में यह एक बड़ा कदम था।

अरुणाचल प्रदेश में प्रथम नवसाक्षर लेखन कार्यशाला का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने राजीव गांधी विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में अरुणाचल प्रदेश में नवसाक्षरों के लिए हिंदी पुस्तकें विकसित करने हेतु अपनी पहली कार्यशाला का आयोजन 12 से 14 नवंबर, 2025 तक राजीव गांधी विश्वविद्यालय, दोईमुख, ईटानगर के दूरस्थ शिक्षा विभाग में किया। न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम तथा राजीव गांधी विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रो. जयदेव साहू ने अनेक विद्वत्जनों के सान्निध्य में इस कार्यशाला का उद्घाटन किया।

प्रो. जयदेव साहू ने अपने वक्तव्य में हिंदी साहित्य में अरुणाचल प्रदेश के लेखकों की बढ़ती उपस्थिति की सराहना की और विश्वास व्यक्त किया कि यह कार्यशाला नए शिक्षार्थियों के बीच पठन-संस्कृति को मजबूत करेगी। कार्यशाला को संबोधित करते हुए श्री कुमार विक्रम ने इस बात पर जोर दिया कि कार्यशाला का उद्देश्य विचारों का आदान-प्रदान करना और नवसाक्षर पाठकों के लिए सरल, आकर्षक कहानियाँ तैयार करना है, जिनमें पर्यावरण संरक्षण, लैंगिक समानता और आवश्यक जीवन-कौशल जैसे विषयों को समाहित किया गया हो। उन्होंने नवसाक्षरों के समर्थन में एनबीटी के राष्ट्रव्यापी अभियान पर प्रकाश डाला और हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में अरुणाचल प्रदेश के हिंदी लेखकों के बहुमूल्य योगदान को रेखांकित किया।

इस कार्यशाला में प्रो. ओकेन लेगो, प्रो. जोराम यालम नबाम, डॉ. जमुना बीनी, डॉ. तारो सिन्दिक, सुश्री गुम्पी डूसो लोम्बि, डॉ. आइनम इरिंग, श्री दोरजी लोन्पु, सुश्री नोमी मागा गुमरो आदि प्रसिद्ध लेखकों ने भाग लिया। कार्यशाला का समन्वय एनबीटी के हिंदी संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने किया। कार्यशाला में नवसाक्षर पाठकों के लिए लगभग 20 कहानियाँ और सूचनात्मक सामग्री तैयार की गई।

अहमदाबाद अंतरराष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव 2025 का भव्य आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने अहमदाबाद नगर निगम के सहयोग से रिवरफ्रंट इवेंट सेंटर में 13 से 23 नवंबर, 2025 तक अहमदाबाद अंतरराष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव 2025 का आयोजन किया। यह महोत्सव भारत की पठन-संस्कृति को मजबूत करने और देशभर में साहित्यिक आंदोलन का विस्तार करने के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के दृष्टिकोण को दर्शाता है।

इस महोत्सव का भव्य उद्घाटन माननीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान और गुजरात के माननीय मुख्यमंत्री श्री भूपेंद्रभाई पटेल ने 13 नवंबर, 2025 को किया। उद्घाटन समारोह में एक भावपूर्ण क्षण देखने को मिला, जब वहाँ उपस्थित लोगों ने राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्' के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 'वंदे मातरम्' का सामूहिक गान किया, जिससे पूरा वातावरण देशभक्तिमय हो गया।

इस पुस्तक महोत्सव का एक प्रमुख आकर्षण भारत के राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम' की 150वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में आयोजित विशेष प्रदर्शनी रही, जो बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के बाँग्ला ऐतिहासिक उपन्यास 'आनंदमठ' से लेकर राष्ट्रीय जागरण और एकता के प्रतीक के रूप में इसके उदय तक की यात्रा को दर्शाती है। प्रदर्शनी में 'आनंदमठ' पर एक विशेष स्टॉल भी लगाया गया, जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करता है।

माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी ने इस पुस्तक महोत्सव का दौरा किया। उन्होंने बच्चों को पुस्तकें वितरित कीं और विभिन्न स्टॉलों का अवलोकन किया। इसी क्रम में माननीय मंत्री जी ने 'वंदे मातरम् प्रदर्शनी' का भी अवलोकन किया, जहाँ राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने प्रदर्शनी की संकल्पना से उन्हें अवगत कराया तथा पुस्तक महोत्सव में आयोजित विभिन्न गतिविधियों की विस्तृत जानकारी दी। पुस्तक महोत्सव में भ्रमण के दौरान माननीय गृह मंत्री ने कहा, "यह आयोजन साहित्यिक संवाद, लोकगीत एवं काव्य-पाठ, बाल गतिविधियों और स्टार्ट-अप फोरम जैसे विविध कार्यक्रमों से समृद्ध है, जो बच्चों और युवाओं में पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने तथा उनके बौद्धिक और कौशल विकास को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"

इस महोत्सव में हंसाजी योगेंद्र, नीरजा चौधरी, अखिलेंद्र मिश्रा, उत्पल कुमार, शिव खेड़ा, राहुल शिवशंकर, नितिन सेठ, इसाबेल पेरेज़ गैल्वेज़ जैसे कई प्रसिद्ध लेखकों, कलाकारों, विद्वानों और प्रकाशन पेशेवरों ने भाग लिया। इस महोत्सव में विशेष रूप से बनाये गए बाल मंडप में बच्चों के लिए विविध रचनात्मक गतिविधियों का भी आयोजन किया गया। यहाँ पुस्तकों, विचारों और रचनात्मकता के संगम के लिए पाठक, लेखक और संस्कृति प्रेमी एक साथ आए। साथ ही, प्रसिद्ध लेखकों, प्रकाशकों और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों की एक विविध श्रृंखला 'साबरमती एवं साहित्य, रचनात्मकता और सामुदायिक भागीदारी' साबरमती नदी तट पर देखने को मिली।

पुणे पुस्तक महोत्सव 2025 के तीसरे संस्करण का भव्य आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा महाराष्ट्र सरकार के सहयोग से पुणे पुस्तक महोत्सव 2025 के तीसरे संस्करण का भव्य आयोजन 13 से 21 दिसंबर, 2025 तक पुणे के फर्ग्यूसन कॉलेज ग्राउंड्स में किया गया। इस समारोह का उद्घाटन 13 दिसंबर, 2025 को किया गया, जिसमें महाराष्ट्र सरकार में उच्च एवं तकनीकी शिक्षा मंत्री श्री चंद्रकांत पाटिल, नागरिक

उड्डयन राज्य मंत्री श्री मुरलीधर मोहोल, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सुरेश गोसावी और प्रख्यात लेखक श्री विश्वास पाटिल की विशेष उपस्थिति रही। इस अवसर पर एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, पुणे पुस्तक महोत्सव के संयोजक श्री राजेश पांडे, डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी के अध्यक्ष श्री प्रमोद रावत, सुश्री बागेश्री मंथलकर, श्री प्रसेनजीत फडणवीस, श्री आनंद कटिकर और श्री संजय चकाने भी उपस्थित थे।

अपने मुख्य भाषण में श्री चंद्रकांत पाटिल ने मराठी भाषा को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि पुणे को विश्व पुस्तक राजधानी बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए। उन्होंने पुणेवासियों से बड़ी संख्या में महोत्सव में भाग लेने और पुस्तकें खरीदने का आग्रह किया। श्री मुरलीधर मोहोल ने कहा, "पुणे पुस्तक महोत्सव का आयोजन केवल पुस्तकों की बिक्री तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें ऐसे सेमिनार भी शामिल हैं, जो विद्वत्तापूर्ण और वैचारिक चिंतन को बढ़ावा देते हैं। इसी कारण इसे भारतीय विचार, संवाद और संस्कृति का महोत्सव कहा जाता है।" पुणे पुस्तक महोत्सव की प्रगति के बारे में बात करते हुए श्री विश्वास पाटिल ने कहा कि महज दो वर्षों में पुणे महोत्सव दिल्ली और कोलकाता के प्रतिष्ठित पुस्तक मेलों के स्तर तक पहुँच गया है। उन्होंने महोत्सव को 'ग्रंथ पंढरी' यानी पुस्तकों की पवित्र तीर्थयात्रा कहा और पढ़ने को जीवन भर का साथी बताया, यहाँ तक कि एकांत के क्षणों का भी। महाराष्ट्र में पठन-संस्कृति की सराहना करते हुए, एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मराठे ने कहा, "पुणे के साथ-साथ नागपुर पुस्तक महोत्सव भी महाराष्ट्र में लोकप्रिय हो रहा है। इस वर्ष महाराष्ट्र में दो पुस्तक महोत्सव आयोजित किए जा रहे हैं। इन पुस्तक महोत्सवों ने पठन आंदोलन को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।"

पुणे पुस्तक महोत्सव के एक कार्यक्रम में महाराष्ट्र के माननीय मुख्यमंत्री श्री देवेंद्र फडणवीस द्वारा 15 दिसंबर, 2025 को 'गिनीज गाथा : युवाओं के नेतृत्व में जनभागीदारी' नामक पुस्तक का लोकार्पण किया गया। यह प्रकाशन उन सामूहिक प्रयासों का दस्तावेजीकरण करता है, जिनके कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड्स बने, और यह दर्शाता है कि पुणे में पढ़ने की संस्कृति क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सीमाओं से परे फैल गई है।

बिहार राज्य के माननीय राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान ने विशिष्ट अतिथियों एवं प्रबुद्धजनों की उपस्थिति में पुणे लिट फेस्ट 2025 का उद्घाटन 16 दिसंबर, 2025 को किया। पुणे लिट फेस्ट के अंतर्गत 21 दिसंबर को श्री युवराज मलिक, एनबीटी-निदेशक और श्री एस. जयशंकर, विदेश मंत्री, भारत सरकार का संवाद सत्र आयोजित किया गया, जो काफी उत्साहवर्धक और ज्ञानवर्धक रहा।

इस नौ दिवसीय महोत्सव में 900 स्टॉल लगाये गए, जिनमें 800 पुस्तक स्टॉल रहे, जिन पर सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकें प्रदर्शित की गईं। बाकी 100 खाद्य स्टॉल रहे। इस आयोजन का उद्देश्य पठन, साहित्य और विचारों को बढ़ावा देना रहा, साथ ही आगंतुकों को एक जीवंत सांस्कृतिक अनुभव प्रदान करना भी। आयोजन स्थल पर प्रतिदिन शाम को संगीत कार्यक्रम भी आयोजित किये गए।

साहित्य, सिनेमा, विज्ञान और संगीत जगत की कई जानी-मानी हस्तियों ने इस महोत्सव में भाग लिया। इनमें बुकर पुरस्कार विजेता लेखिका सुश्री बानू मुश्ताक, वृत्तचित्र फिल्म निर्माता श्री सिद्धार्थ काक, अंतरिक्ष यात्री श्री शुभांशु शुक्ला और ग्रैमी पुरस्कार विजेता संगीतकार श्री रिकी केज प्रमुख रहे।

मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने गोरखपुर पुस्तक महोत्सव के प्रथम संस्करण का उद्घाटन किया

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने उत्तर प्रदेश सरकार और दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के सहयोग से 'पुस्तकों का महाकुंभ' के नाम से प्रसिद्ध, नौ दिवसीय गोरखपुर पुस्तक महोत्सव 01 से 09 नवंबर, 2025 तक दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (डीडीयूजीयू) में आयोजित किया। महोत्सव का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने किया। इस अवसर पर प्रसिद्ध अभिनेता और लोकसभा सांसद (गोरखपुर) श्री रवि किशन, माननीय मुख्यमंत्री के सलाहकार श्री अवनीश के. अवस्थी, एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक, एनबीटी के सलाहकार परिषद् के सदस्य आचार्य पवन त्रिपाठी, डीडीयूजीयू की कुलपति प्रो. पूनम टंडन सहित अन्य विशिष्ट अतिथि उपस्थित रहे।

श्री योगी आदित्यनाथ ने ऐसे आयोजनों के महत्व पर जोर देते हुए कहा,"पुस्तकें व्यक्ति की सच्ची साथी और मार्गदर्शक होती हैं। अगले नौ दिनों तक गोरखपुर पुस्तक महोत्सव इस पवित्र भूमि के ज्ञान और परंपरा को प्रकाशित करेगा। यह पुस्तक महोत्सव आपकी रुचि की पुस्तकों का चयन करने, पढ़ने और खरीदने के लिए एक उत्कृष्ट मंच है।" अपने संबोधन में प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने कहा, "गोरखपुर आध्यात्मिक साधना, तपस्या, क्रांतिकारियों, लेखकों और साहित्य की भूमि है। इस पवित्र भूमि पर इतने भव्य पुस्तक महोत्सव का आयोजन इसे सुदृढ़ करने और मनाने का एक प्रयास है।" इस अवसर पर श्री युवराज मलिक ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, "एनबीटी, इंडिया गोरखपुर पुस्तक महोत्सव का आयोजन करते हुए अत्यंत गौरवान्वित महसूस करता है। हम माननीय

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी और माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ के साझा दृष्टिकोण, 'हर हाथ में एक पुस्तक' को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

इस पुस्तक महोत्सव में 100 से अधिक प्रकाशकों की भागीदारी रही, जिन्होंने 200 से अधिक पुस्तक स्टॉलों पर हिंदी, अंग्रेजी और कई भारतीय भाषाओं में हजारों पुस्तकों का प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त, एक विशेष बाल मंडप और एक साहित्यिक मंच पर प्रसिद्ध लेखकों और विशेषज्ञों के साथ संवादात्मक सत्र, कार्यशालाएँ और चर्चाएँ आयोजित की गईं। साहित्य, संगीत और कला को एक साथ लाते हुए, गोरखपुर पुस्तक महोत्सव का उद्देश्य सीखने, रचनात्मकता और सामुदायिक उत्सव के लिए एक जीवंत मंच तैयार करना था, जिसमें उसे भरपूर सफलता मिली।

काशी तमिल संगमम् 4.0 में काशी तमिल का अद्भुत ज्ञान सेतु

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार और आईआईटी मद्रास और बीएचयू वाराणसी के समन्वय से काशी तमिल संगमम् का आयोजन 02 दिसंबर से 15 दिसंबर, 2025 तक हुआ। माननीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान और उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने 02 दिसंबर, 2025 को काशी तमिल संगमम् के चौथे संस्करण का उद्घाटन किया। इस अवसर पर तमिलनाडु के माननीय राज्यपाल श्री आर.एन. रवि, उत्तर प्रदेश के उपमुख्यमंत्री श्री ब्रजेश पाठक, पुडुचेरी के माननीय उपराज्यपाल श्री के. कैलाशनाथन और सूचना, प्रसारण एवं संसदीय कार्य राज्य मंत्री डॉ. एल. मुरुगन की गरिमामयी उपस्थिति रही।

उद्घाटन समारोह में अपने संबोधन में श्री धर्मेंद्र प्रधान ने कहा कि प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा परिकल्पित काशी तमिल संगम ने काशी और तमिलनाडु के बीच एक उल्लेखनीय ज्ञान सेतु का निर्माण किया है, जिससे भारतीय सभ्यता के इन दो स्तंभों के बीच सदियों पुराने संबंध और भी मजबूत हुए हैं। श्री योगी आदित्यनाथ ने कहा कि यह पहल 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की भावना को और मजबूत करती है और भारत की विविधतापूर्ण सांस्कृतिक पहचानों का उत्सव मनाते हुए उसकी एकता को संरक्षित करने में मदद करती है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने संस्कृति, भाषा और साहित्य के इस संगम में सहभागिता की। वर्ष 2025 का विषय था, 'आइए, तमिल सीखें' (तमिल करकलाम)। इस थीम के अनुरूप न्यास द्वारा तमिल, हिंदी, अंग्रेजी और हिंदी-तमिल द्विभाषी संस्करणों सहित पुस्तकों की एक विस्तृत शृंखला प्रदर्शित की गई, साथ ही कई गतिविधियों का आयोजन भी किया गया। अनुवाद और ज्ञान के आदान-प्रदान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के तहत, एनबीटी ने एक विशेष हिंदी से तमिल अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें विशेषज्ञों और युवा अनुवादकों को रास्ते तलाशने के लिए एक साथ लाया गया। इस वर्ष का एक प्रमुख आकर्षण काशी पर आधारित मूल तमिल बाल पुस्तकों का प्रकाशन था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू) में एक शैक्षणिक सत्र के दौरान, एनबीटी से 24 अनूदित पुस्तकों (केटीएस 3.0 के तहत पूर्ण) का लोकार्पण बीएचयू के कुलपति और प्रसिद्ध लेखक श्री अमीश त्रिपाठी ने किया।

इसके साथ ही, शिक्षा मंत्रालय की राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय की डिजिटल लाइब्रेरी को भी प्रमुखता दी गई, ताकि पाठक तमिल सहित कई भारतीय भाषाओं में उपलब्ध पुस्तकों तक आसानी से पहुँच सकें। इसके अतिरिक्त, एनबीटी संगमम् के दौरान नमो घाट पर बच्चों के लिए कई रचनात्मक और मनोरंजक गतिविधियों का आयोजन किया गया, जहाँ सैकड़ों युवा प्रतिभागियों को अपनी रचनात्मकता और कहानी कहने के कौशल को निखारने का अवसर मिला। वाराणसी के विभिन्न विद्यालयों के 600 से अधिक छात्र-छात्राओं ने इन गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया। नमो घाट पर आयोजित ये कार्यक्रम काशी तमिल संगमम् 4.0 के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक विविधता, कला-संवेदना और ज्ञान-संपन्नता को राष्ट्र की भावी पीढ़ी तक पहुँचाने का माध्यम सिद्ध हुए।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : _____

पता : _____

जिला : _____ शहर _____ राज्य _____ पिन कोड _____

फोन : _____ ई-मेल : _____

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) _____ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) _____ ड्राफ्ट संख्या _____ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी _____ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।
सदस्यता के आवेदन हेतु इस सदस्यता प्रपत्र की प्रतिलिपि का उपयोग करें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए उत्कृष्ट प्रकाशन

जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख
सातत्य और सम्बद्धता का ऐतिहासिक वृत्तांत

संपादक : **रघुवेन्द्र तंवर**

यह पुस्तक छायाचित्रों, रेखाचित्रों, दृश्यों और विविध शोध कार्यों के माध्यम से लगभग 3,000 वर्षों के जम्मू, कश्मीर एवं लद्दाख के ऐतिहासिक घटनाक्रम को उद्घाटित करती है।

पृ. 212; रु. 1290.00 (सजिल्द)

दिल्ली की जीवनरेखा
दिल्ली मेट्रो

ऋषि राज

प्रस्तुत पुस्तक में दिल्ली मेट्रो की शुरुआत होने से लेकर वर्तमान में मेट्रो निर्माण के चौथे चरण में पहुँच जाने तक की यात्रा को, दिल्ली मेट्रो के विविध आयामों के सांगोपांग विवरण एवं रंगीन चित्रों के साथ प्रस्तुत किया गया है। दिल्ली मेट्रो पर पठनीय एवं महत्वपूर्ण पुस्तक।

पृ. 112; रु. 410.00

कुछ यूँ रचती है हमें किताब

डॉ. आर.डी. सैनी

कैसे स्कूली वातावरण से डरा और भागा एक छात्र पुनः कक्षा में लौट आता है और न केवल कक्षा का अव्वल छात्र बनता है, बल्कि स्कूली समय में ही एक कथाकार, एक लेखक भी बन जाता है, इसे बहुत ही रोचक और सुरुचिपूर्ण तरीके से इस किताब में बताया गया है।

पृ. 84; रु. 155.00

कथक का सौंदर्य : गुरुमुख से

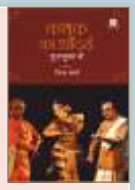

चित्रा शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक में कथक के शीर्ष व्यक्तित्व, पंडित बिरजू महाराज तथा सितारा देवी से लेकर आज के सक्रिय समकालीन अनेक कथक नृत्यकारों तथा कला-समीक्षकों से लेखिका द्वारा की गई बातचीत को साक्षात्कार रूप में सम्मिलित किया गया है।

पृ. 200; रु.280.00

भारत की प्रयोगशालाएँ

मनीष मोहन गोरे

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के प्रमुख वैज्ञानिक संगठनों से संबद्ध लगभग 70 से अधिक प्रयोगशालाओं को लेकर महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है। इसमें प्रयोगशाला की स्थापना, उनके मुख्य उद्देश्य, प्रमुख अनुसंधान और तकनीकी उपलब्धियों को संक्षिप्त रूप में समाहित किया गया है।

पृ. 246; रु. 480.00

जलवायु परिवर्तन : एक समझ

एम.ए. हक

अनुवादक : **आलोक तिवारी**

प्रस्तुत पुस्तक जलवायु परिवर्तन संबंधी खतरों से परिचय करवाती है और इससे जुड़ी दीर्घकालिक समस्याओं पर प्रकाश डालती है। यह पुस्तक इसके कारण होने वाले संकट को कम करने की दिशा में काम कर रहे समुदायों, संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए जा रहे विविध उपक्रमों की पड़ताल भी करती है।

पृ.161; रु. 230.00

भोजपुरी लोकनाट्य परंपरा और जलुआ
(आनुष्ठानिक स्त्री लोकनाट्य)

शची मिश्र

प्रस्तुत पुस्तक में भोजपुरी की लुप्तप्राय लोकनाट्य विधा जलुआ जैसी जीवंत सांस्कृतिक धरोहर को सँजोने का प्रयास किया गया है। साथ ही, इसमें इस परंपरा के लुप्त होने के कारण और इसके संरक्षण हेतु उपायों को भी व्याख्यायित किया गया है।

पृ. 191; रु. 250.00

nbt.india
एक भूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
फोन : 011-26707761 • **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in
वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in